लाल बत्ती जल रही है

(व्यंग्य संग्रह)

महावीर अग्रवाल

शारदा प्रकाशन
५४२ के.एल. कीडगंज, इलाहाबाद

शारदा प्रकाशन
५४२ के० एल० कीडगंज
इलाहाबाद २११ ००३.

संस्करण—१९८६

जय हनुमान प्रिंटिंग प्रेस
1/c बाई का बाग, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

आवरण—अनिल कामड़े

Vyanga Sangrah
'Lal Batti Jal Rahi Hai'.

मूल्य : बीस रुपये

भैय्या त्रिभुवन सिंह
और विद्या भाभी के लिए
जिनकी अंगुली पकड़कर
चलना सीखा

भूमिका

महावीर अग्रवाल का यह पहला व्यंग्य संग्रह है। मुख्यतः इसमें उनके समय-समय पर या नियमित लिखे गये व्यंग्य स्तम्भ तथा कुछ स्वतंत्र रचनाएँ हैं। व्यंग्य विसंगति अतिरेक, ढोंग, पाखंड, अनुपातहीनता आदि को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करने का माध्यम है। हमारे जमाने में चारों तरफ विसंगतियाँ ही विसंगतियाँ हैं और वे पहले से अधिक लक्षित की जा रही हैं। समाज एक संतुलन बनाए रखता है, एक आनुपातिकता—सामाजिक क्रिया-कलाप और व्यवहार में होती है। एक स्तर होता है, एक मानदंड होता है। पानी जैसी समतलता समाज भी खोज लेता है। इस समतलता को 'नार्मल' होना कहा जाता है। जब यह समतलता गड़बड़ा जाती है तब हमारी चेतना को झटका लगता है और यदि हम लेखक हैं तो इस अतिरेक और असंगति के विद्रूप को प्रगट करते हैं।

महावीर अपने निकट परिवेश का पर्यवेक्षण करते हैं। वे कहीं भागीदार हैं और कहीं मात्र पर्यवेक्षक। वे स्वयं अध्यापक हैं, इसलिए स्कूल के वातावरण में भागीदार हैं। छात्रों के जीवन में उनकी दिलचस्पी है। साथ ही वे इस जीवन के पर्यवेक्षक और आलोचक भी हैं। अब साधारणतः छात्रों की ट्यूशन को हमारे संतुलन ने स्वीकार कर लिया है। कोई-कोई छात्र अध्यापक के घर पढ़ने जाते हैं और पढ़ाई पूरी करते हैं। अध्यापक को छात्र का अभिभावक फीस देता है। यह एक संतुलन स्वीकार कर लिया गया है। पर अगर ऐसा हो कि पूरी कक्षा को अध्यापक स्कूल में न पढ़ाकर घर पर पढ़ाने लगे तो संतुलन बिगड़ता है, अतिरेक होता है। इस पर महावीर जी कटाक्ष करते हैं। इसकी आलोचना करते हैं। यह कटाक्ष मात्र होता है चोट नहीं होती। यह असंतुलन, अनुपातहीनता और विसंगति को सामने रख देता है और निष्कर्ष निकालने के लिए पाठक स्वतन्त्र होता है। महावीर स्वयं निष्कर्ष निकालकर नहीं देते। महावीर जी की यही 'एप्रोच' है।

अपने निकट परिवेश से वे शुरू करते हैं। परिवेश का दायरा बढ़ता जाता है। वह राजनीति तक पहुँचता है, धर्म तक पहुँचता है। इसके साथ-साथ नये-पुराने सन्दर्भ जुड़ते हैं और लेखन की भूमिका तैयार होती है। चुनाव की राजनीति, कुर्सी के लिए दौड़, कुर्सी से चिपकना आज आम प्रवृत्ति है। पर इसका अतिरेक लेखक को बर्दाश्त नहीं। मुखौटे उसे पसंद नहीं। वह इसकी ओर इंगित करता है। जीता हुआ उम्मीदवार और हारा हुआ उम्मीदवार दोनों ढोंग करते हैं, दोनों मुखौटे लगाते हैं। इसे लेखक उजागर करता है। तीर्थों में क्या आशा लेकर श्रद्धालु जाता है और वहाँ क्या होता है इस असंगति को भी लेखक परिलक्षित करता है।

महावीर जी का अनुभव क्षेत्र व्यापक है। अनुभवों को उन्होंने 'कंडीशन' नहीं किया है। इस कारण उनकी रचनाओं में विविधता है। एकरूपता के दोष से वे बचे हैं। उनकी शैली और भाषा सधी हुई है। वे अनावश्यक शब्दाडंबर नहीं करते। संतुलन बनाए रखते हैं। इसलिए ये रचनाएँ जिनमें कटाक्ष के साथ आलोचना है, सधी हुई रचनाएँ हैं।

हरिशंकर परसाई

क्रम

खण्ड-एक

॥ आदमी नया है मगर सावधान है ॥

खण्ड-दो

॥ नाव में बैठा है तूफान मेरे देश में ॥

खण्ड-तीन

॥ बड़ा अजीब समेटा है क्या किया जावे ॥

सेठ की साहित्यिक यात्रा

मुन्नीबाई और चमेलीबाई के कोठों पर घुंघरूओं की झंकार का समां बंधा है। वाह-वाह की गूंज है। बेला फूले पहली रात, लागा चुनरी में दाग, मिट्टी में मिल जाय हाय जवानी मोरी राम, हाय हाय बलमा बड़ा बेदर्दी और बेला महके आधी रात—जैसे तराशे हुए बोल सधी हुई आवाज में सुनना "सेठ" का सबसे बड़ा शौक है। "सेठ" का दूसरा शगल मंदिरों में चढ़ावे के साथ-साथ भजन प्रतियोगिताओं का आयोजन करवाकर भगवान के साथ-साथ पुजारी को प्रसन्न रखना है। अपनी तारीफ के पुलों के ऊपर से गुजरते हुए नगर के प्रसिद्ध समाजसेवी, दानवीर "सेठ" अपने आपको बड़ा साहित्य प्रेमी और कला संरक्षक मानते हैं।

ऐसे "सेठ के आगे-पीछे चार लोग रहते ही हैं। बहुत से साहित्यिक प्रेमी और कवि हृदय साहित्यकारों पर भी उनकी कृपादृष्टि लगातार बनी रहती है। इनकी सूची समय की धारा के अनुसार सेठ की इच्छानुसार बदलती रहती है। मजे की बात यह होती है कि सेठ उन्हें अपना चमचा समझता है और कवि हृदय साहित्यप्रेमी सेठ को अपना मित्र मानकर गदगद होते हैं। दोनों एक दूसरे को पाकर गौरवान्वित होते हैं। हर्षोल्लास से भर जाते हैं। प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर कभी अनारदाने की तरह तो कभी फुलझड़ी की तरह झरता हुआ नजर आता है।

चाँदी के कलदारों की खनक और मुन्नीबाई के घुंघरूओं की झंकार में मगन रहने वाले सेठ को एक बार साहित्यकारों की जमात ने घेर लिया। उन्होंने कुछ कविताओं में चर्चा गोष्ठी में मुख्य अतिथि बनना स्वीकार कर लिया। विषय था—"कविता में चेतना का सौंदर्य बोध।"

इसके अतिरिक्त भी दो-तीन आलेख पढ़े गये। उस गोष्ठी में एक उदीयमान कवयित्री भी मौजूद थी। रचना की अपेक्षा आदरणीया अपनी

गलेबाजी और सुन्दरता के साथ-साथ कच्ची उम्र के लिए दूर-दूर तक प्रख्यात थी। गोष्ठी पूरे रंग पर थी। दमखम के साथ बहस जारी थी। अपनी-अपनी विद्वता का लोहा सभी मनवाने के लिए कटिबद्ध थे। महान साहित्यकारों के कथन को कोड करते हुए सब एक दूसरे को धोबी पछाड़ देने पर तुले थे। सेठ का दिमाग भन्ना रहा था। निराला, मुक्तिबोध, सूर, तुलसी, कबीर, मार्क्स और लेनिन के विचारों के बोझ तले सेठ दबा जा रहा था।

किसी ने कहा—कविता व्यक्ति और समाज के गहरे संबंधों को अभिव्यक्ति देने का सशक्त माध्यम है।

दूसरे ने कहा—"कविता महज ख्याली पुलाव नहीं है? कविता आदमी के भीतर की गहराई से निकली पुकार है।"

तीसरे ने कहा—"कविता में देश और समाज की तात्कालिक स्थितियों का चित्रण होना चाहिए। कविता परिवर्तन के लिए हथियार है। कविता से ही क्रांति संभव है।"

चौथे ने—"अज्ञेय" को कोड करते हुए कहा—"अज्ञेय के अनुसार साहित्य के माध्यम से क्रांति की बात करने वाले कुएं के भीतर उछलने वाले मेंढक होते हैं।"

फिर किसी ने कहा—"कविता में अपने हृदय के स्पंदन और सभी हृदयों को रोमांचित करने के लिए मानवता के अंकुर फूटने चाहिए।"

किसी ने प्रेमचंद का यह कथन अपने विचारों के साथ प्रस्तुत किया—"साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन के समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।"

सेठ साब तकिए के सहारे अधलेटे थे। अधमुंदी आंखों से उन्हें बार-बार मुन्नीबाई और चमेलीबाई की याद आ रही थी। सोच रहे थे आज बुरे फंसे। सेठ बीच-बीच में करवट बदलते थे। धीरज का बांध टूट गया

सेठ ने बीच में ही बोलना प्रारंभ कर दिया। कविता का सौंदर्य सामने है। आप लोग क्या अंट-शंट बक रहे हैं। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आपने तो मुझे कविता में चेतना का सौंदर्य बोध सुनने बुलाया था। मैं कविता में सौंदर्य की बात सुनने आया था और आप सब भाषण पर भाषण पिलाए जा रहे हैं। कवि सम्मेलन का यह नीरस पहला दौर समाप्त कीजिए। रात जवान हो चुकी है। दूसरे दौर की मानसिकता में आइए। मैं अंचल की ख्यातिलब्ध कवियत्री कोकिला देवी से अनुरोध करता हूँ कि वे अपनी कविता की रसधार बहाकर हमें कृतार्थ करें। कोकिल कंठी कोकिला देवी ने कविता में गले की मिठास घोलकर कानों में रस घोल दिया। आवाज का जादू सर पर चढ़कर बोलने लगा। खनकती हुई आवाज की मधुरता कानों द्वारा हृदयों तक पहुँचकर मन को आह्लादित करने लगी। मीठी और मधुर आवाज में कविता का रंग जमने लगा।

सेठ गदगद हो गया। वाह....वाह....वाह....। क्या बात है—की झड़ी लगा दी। अपनी रसिकता और साहित्य के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि बहसें भी जरूरी हैं। कविता में गरीबों की भी बात हो परन्तु और सभी विषयों पर भी कविताएँ होनी चाहिए। गोष्ठी के मध्य इस परिवर्तन की धृष्टता के लिए उन्होंने खेद प्रगट किया। आगामी महीने में उन्होंने अपने जन्म दिवस को साहित्यिक गोष्ठी के माध्यम से मनाने की घोषणा की। सभी साहित्यकारों और कला प्रेमियों को डिनर पर आमंत्रित किया। उस दिन कोकिला देवी के अभिनन्दन और गीतसुधा के आयोजन की घोषणा की गई। प्रयोगवादी रसिक कवियों ने गदगद भाव से तालियाँ बजाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। अनेक जनवादी कहे जाने वाले रचनाकारों और तथाकथित समीक्षकों ने भी नाक भौं सिकोड़ते हुए आलोचना का गुब्बारा फुलाते हुए इस साहित्यिक गोष्ठी का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। सब के सब, मन ही मन अंग्रेजी पीने की लालसा और कोकिला देवी की रक्षा हेतु कटिबद्ध हो चुके थे। इसलिये सिद्धान्ततः सहमत न होते हुए भी उन्होंने स्वीकृति दी।

जन्म दिन पर गोष्ठी का भव्य शुभारंभ हुआ। कविता और गीत अपनी पूरी बहार पर थे। मुफ्ते माल दिले बेरहम वाली कहावत चरितार्थ हुई। सब पी पीकर लुढ़क चुके थे। कोकिला देवी और सेठ केवल दो लोग जाग रहे थे। आंखों ही आंखों में मुस्कुरा रहे थे। गीत सुधा थम रही थी।

दूसरे दिन न्यूज पेपर के मुख्य पृष्ठ पर कवि गोष्ठी का स्वर्णाक्षरों में उल्लेख हुआ था। सेठ द्वारा कोकिला देवी का सम्मान करते हुए मंच पर अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार पार्श्व दिखाई दे रहे थे। परन्तु एक साप्ताहिक पत्र ने औंधे पड़े लोगों की फोटो के साथ साहित्यिक गोष्ठी की रिपोर्ट इस टिप्पणी के साथ उछाल दी थी। हाकर चिल्ला-चिल्लाकर साप्ताहिक पत्र बेच रहे थे :

अपनी साहित्यिक गोष्ठियों में
उघड़ी, नंगी देह की चर्चा करते
फिर किसी अश्लील चुटकुले पर
तोंद पर हाथ फेरते हुए हो-हो कर हंसते

□□

पंचवर्षीय योजनाएँ–एक उदीयमान-की

एक उदीयमान कवि, लेखक व कहानीकार अपने साहित्यिक जीवन के उषाकाल से ही डाक विभाग को अपनी पांडुलिपियाँ देश भर में लाने ले जाने के लिए मालामाल करता रहा। परंतु लगातार पाँच वर्षों तक अपने प्रयत्नों की घनघोर वर्षा के बावजूद भी वे अपनी छपास की महत्वाकांक्षा भिगो नहीं पाए। प्रथम पंचवर्षीय योजना की असफलता के बावजूद भी निराशा उन्हें जकड़ने में पूर्णतः असमर्थ रही। उन्होंने स्वयं यह सोचकर कि अभी उनकी उम्र गधापच्चीसी की है, व्यक्तित्व में गंभीरता की प्रतीक मानी जाने वाली कनपटी के बालों पर सफेदी आने तक कुछ वर्ष और इन्तज़ार किया। एक-दो सफेद बाल जैसे ही कनपटी पर दिखाई देने लगे, उनकी महत्वाकांक्षा पुनः पर लगाकर साहित्याकाश में ऊँची उड़ान भरने लगी। उन्होंने पुनः बड़ी सूझ-बूझ लगन व मेहनत से विश्वास और आस्था के साथ, पक्षपातपूर्ण नीति एवं भाई भतीजावाद के कारण (उनके स्वयं के कथनानुसार) वे स्वयं को स्थापित नहीं कर सके। इस प्रकार उनकी सुन्दर सुडौल अक्षरों में टाईप की हुई पांडुलिपियों ने संपादकों के मानसिक संतुलन को असन्तुलित करने का ही कार्य किया।

उदीयमान ने बचपन में अनेकों बार निराश व हताश राजाओं को प्रोत्साहित कर आठवीं बार चढ़ाई के लिये प्रेरित करने वाली अनोखी मकड़ी की कहानी पढ़ी थी। उन्होंने साहित्य एवं दर्शनशास्त्र में एम० ए० भी किया था। अतः वे स्वयं को कार्ल मार्क्स, गांधी एवं चलोमेंगो का अद्भुत समन्वयवादी विचारक भी समझते थे। कर्मठता तो उनकी रग-रग में फड़कती थी, नई जवान नटनी की तरह। उस सांड की तरह—जो-जब भी जो कोई सामने आये, बस सींग पर उछाल फेंके। पसीने के स्थान पर लहू बहाना वे अपना अधिकार समझते थे। इस तरह "हिम्मते मर्द-मददे

खुदा" की भावना को हृदय में धारण कर, अपनी असफलताओं को भूलकर तीसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा बनाने की उधेड़बुन में पूरी जवांमर्दी के साथ भिड़ गये। दिमागी घोड़े की रास को उन्होंने ढील दी और घोड़े ने अपना करतब दिखाना शुरू किया। अचानक घोड़ा ठिठका। विचार कौंधा कि क्यों न तीसरी योजना का श्रीगणेश कवि गोष्ठी द्वारा किया जाए। इस प्रकार उन्होंने अपने निवास स्थान पर धूमधाम से कवि गोष्ठी आयोजित की। इसमें नगर के स्थापित साहित्यकार, प्रसिद्ध पत्रकार तथा क्षेत्रीय कवियों को भी आमंत्रित किया गया। संयोगवश उसी दिन नगर में अखिल भारतीय पधारे। उदीयमान दीन सुदामा की तरह आतुर हो कृष्ण से मिलने चले। अपनी विद्वता का वहाँ विनम्रतापूर्वक प्रदर्शन कर कवि गोष्ठी की अध्यक्षता करने की स्वीकृति उनसे जबरदस्ती प्राप्त कर ली। फिर क्या था सध्या दीवानी होने लगी। उदीयमान का पोर-पोर पुलक उठा। मस्ताना दरबार अगरबत्तियों की सुगंध के बीच स्वल्पाहार से नहीं वरन् दीर्घाहार से गोष्ठी में इंद्रधनुषी रंग चढ़ने लगा। वातावरण धीरे-धीरे साहित्यिक हुआ। सभी कवियों ने अपने रचनाओं का पाठ कर लम्बे अरसे से कैद कविता कामिनियों ने उदीयमान को हृदय से धन्यवाद दिया। जैसे वे जाने लगी। धन्यवाद ज्ञापन कर उदीयमान ने झट उनका हाथ पकड़ा और अपने हृदयासन पर आसीन कर लिया। यह सब हुआ परन्तु आयोजनकर्ता को कविता का रसास्वादन गोष्ठी में नहीं मिल सका क्योंकि उन्हें जलपान व्यवस्था एवं अतिथि सत्कार में ही व्यस्त रहना पड़ा था। वे मजबूरी में मन मसोस कर रह गये।

तत्पश्चात् उन्होंने पत्रकारों एवं नगर के साहित्यकारों के साथ सम्पर्क बढ़ाना प्रारम्भ किया और कभी कभार अपनी रचना छापने के सम्बन्ध में इशारे करने लगे। शनैः शनैः गोष्ठियों के माध्यम से पत्रकारों एवं साहित्यकारों से उनका सम्पर्क बढ़ने लगा और वे पुराने प्रेमी की तरह इशारा न करके अपनी कविता छापने के लिए अधिकारिक अनुरोध करने लगे परन्तु उनकी प्रतिभा को स्वयं के द्वारा आयोजित गोष्ठियों की परिधि में ही

सिसक-सिसक कर रहने के लिए बाध्य होना पड़ा और तृतीय पंचवर्षीय योजना असफलता का लेबल लगाये समाप्त हो गई।

परन्तु वे तो दर्शनशास्त्र के ज्ञाता थे। जीवट तो थे ही। अतः नए सिरे से गम्भीर चिन्तन एवं मनन द्वारा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की रोचक रूपरेखा बनाने लगे। चमचों की सफलता से चकित उदीयमान अब चमचा बनने की कोशिश करने लगे। परन्तु जन्मना, मनसा व कर्मणा साहित्य के सेवक उदीयमान केवल छपास के लिए ही जीते थे। छपास के लिए मरते थे। चम्मचबाजी उन जैसे उच्चकोटि के विद्वान और साधक के बलबूते की बात न थी। अतः उन्होंने सीधे-सीधे हथौड़ा छाप चमचे का अपनी कोमल-कोमल जोन्हा रानी के साथ पानीग्रहण किया। अब क्या था। उदीयमान की जोन्हा रानी हथौड़े सी चोट करने लगी। यह देखकर वे आनन्दमग्न हो जाते। लोग उन्हें देखते रह जाते और वे लोगों को। समय के बदलते हुए रंगों को पहचान कर उन्होंने छोटे-बड़े सम्पादकों की सेवा करने की ठानी। एक दर्जन केले के साथ हाफ केजी० मिठाई का डिब्बा लिये, कंधे पर झोले में स्वरचित कविताओं की लाश ढोते हुए सम्पादकों के घर पर कभी सुबह तो कभी शाम पहुँच जाते। उनकी अनुपस्थिति में धरना देकर बैठ जाते। इस प्रकार सभी रंगीन, साहित्यिक, प्रयोगधर्मी, फिल्मी, धार्मिक एवं सामाजिक चेतना को दिशा देने वाली पत्रिकाओं के सम्पादकों ने उन्हें पांडुलिपियों सहित ससम्मान गेट का रास्ता बताया। अनेकों बार लौटाया गया। खीझकर गेट-आउट कह कर कार्यालयों से निकलवाया गया। इस तरह दरबार ठोकरें खाकर, अपमान और तिरस्कार का पुरस्कार पाकर रुआंसी मुस्कुराहट के साथ उन्होंने चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की समाप्ति की घोषणा कर दी। इस प्रकार चौथी योजना भी उनके सपनों को चकनाचूर कर समाधिस्थ हो गई।

परन्तु उन्होंने हार नहीं मानी। वे अच्छी तरह जानते थे, "रंग लाती है हीना पत्थर पर घिस जाने के बाद।" वे करने लगे फिर से मेहनत। घिसने लगे नई नई कलमें। घिस-घिस कर तोड़ने लगे निबें। जोड़ने लगे

शब्द। रचने लगे साहित्य। लिखने लगे धार्मिक भजन और करने लगे तुकबन्दी में अभिनन्दन। सोच-सोचकर प्रतिदिन बनाने लगे योजना। आखिरकार हारे हुए जुआड़ी की तरह उन्होंने और अधिक बड़ा दांव लगाया। हाथी की तरह विशालकाय परन्तु मन्दगामी पाँचवीं पंचवर्षीय योजना बनाई। युग की माँग के अनुरूप इस योजना में उन्होंने भेंट-पूजा, दलिया एवं चरणोंश को केन्द्र बिन्दु बनाया इसमें दलालों के माध्यम से प्रयास पुनः उछलने लगे। बरसाती मेंढकों की तरह टर्र-टर्र कर शांत हो गई। दलालों को भरपूर, टी. ए., डी. ए. दिया गया। इस प्रयास में उदीयमान की पैतृक सम्पत्ति बिक गई और जमा पूंजी साफ हो गई। उस पर भी हरामखोर दलालों ने डकार तक न ली। उनके लिये तो यह ऊँट के मुँह में जीरा वाली कहावत सिद्ध हुई। उदीयमान कुछ-कुछ निराश, कुछ-कुछ थके-थके से अपनी ही तलैया में गोते लगाते रहे और सब कुछ खोकर फिर से भूल-भूलैया की नई-नई योजना बनाते रहे। पाँचवीं योजना की इस शानदार चोट को अपने फौलादी सीने पर खाने के बाद भी वे ऐसा समझते हैं कि, इब्राहीम लिंकन की तरह कर्म क्षेत्र की अधिकांश लड़ाइयाँ हारकर वे भी अपनी अंतिम लड़ाई में अवश्यमेव विजयी घोषित होंगे।

देखिए उन्होंने छठवीं योजना के शुभ मुहूर्त में कैसा गुल खिलाया। साहित्य के बाग को कैसे गुलजार बनाया। अपने भाव और विचार, अपने हाथ और अपनी कलम जमाने के रंग में रंग कर एक बार फिर और आज-माईश करने की ठानी। उन्होंने जमाने को देखा, विचार किया। समझा और पहचाना। नेतागिरी के इस युग में उन्हें ऐसा लगा कि सफलता के लिए नेता बनना बहुत आवश्यक है। अतः वे "नेतां शरणं गच्छामि" हो गए और आगे बढ़ने के लिए साहित्य में नेतागिरी को जन्म दिया। उन्होंने नगर के एक "समकालीन साहित्य विकास समिति" की स्थापना की। सौ, दो सौ लोगों को घर बाँधकर समिति का संस्थापक सदस्य बनाया गया और स्वयं उसके अध्यक्ष बन बैठे। प्रारम्भ में तो नई-नई सुशील पत्नी की तरह समिति भी दिलोदिमाग पर असर करने लगी। वाहवाही की चाह में डूबे

सभापति अंधाधुंध खर्च करने लगे। बकरी की माँ आखिर कब तक खैर मनाती! नियति ने अपना कमाल दिखाया। साझे की हाण्डी ठीक चौराहे पर सबके सामने खुल्लम-खुल्ला फूटी। चंदे की अभाव में एवं अप्रत्याशित अंधाधुंध खर्चे के भार से समिति का आर्थिक ढाँचा चरमराने लगा। चूँ-चूँ करते ढाँचे के ऊपर बिजली गिरी और समिति का लुभावना शीश महल चूरचूर हो गया। चंदे के गबन की घटना ने समिति की कमर इस कदर तोड़ी कि उस पर कोई रोने वाला भी न बचा। उदीयमान का नेतागिरी का दिवास्वप्न भी मिट्टी में मिल गया। नेता बनने पर सफलता ने उनके चरणे कदम चूमने से साफ इंकार कर दिया। वे चारों खाने चित्त हो गए। छठीं असफलता कुरूप एवं झगड़ालु बीवी की तरह उनसे प्रेमपूर्वक चिपक गई। फिर भी वे डटे रहे मैदाने जंग में। और उन्होंने सातवीं पंचवर्षीय योजना बनाने के लिए गंभीर चिंतन, मनन एवं अध्ययन प्रारंभ किया। बर्षों से बंजर पड़ी जमीन पर लहलहाती फसल उगाने के गुर वे ढूंढने लगे। सतत् हाई जम्प और पोल जम्प का अभ्यास करने लगे। चारों ओर से उन्हें वाहवाही मिलने लगी। अपने जीवन भर के अनुभवों की संचित पूँजी उन्होंने दाँव पर लगाने की ठानी। साहित्य के दाँव में क्रांति का बिगुल का बीड़ा उठाया। जब वे कवि और कहानीकार नहीं हो सके तो मरता क्या न करता के सिद्धांत को अपनाकर समीक्षक बनने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा दिया। वे अब दिग्गज एवं ख्यातिनाम साहित्यकारों के संग्रह की समीक्षा के नाम पर कटु आलोचना करने लगे। कुछ दिन तो ठीक चली गाड़ी। फिर वे पुनरावृत्ति के दोष से घिर गये और परिणाम-स्वरूप उनकी आलोचना की छीछालेदर होने लगी। उनका मोर का सपना भंग हो गया। उनकी सातवीं पंचवर्षीय योजना भी कुछ दूर चलकर लड़-खड़ाने लगी। पर वे लगे रहे।

आठवीं पंचवर्षीय योजना बनाते हुए अचानक ही उन्हें ज्ञात हुआ कि महानगर बंबई में देश की प्रसिद्ध पत्रिकाओं के सम्पादकों का सम्मेलन होने जा रहा है जिसमें युवा उदीयमान साहित्यकारों की प्रतिभा को

विकसित करने, उन्हें आगे बढ़ाने पर विचार किया जायेगा। वे हर्षातिरेक से उछल पड़े। असफलता ही सफलता की पहली सीढ़ी है ऐसा मान सफलता के सोपान पर पहुँचने के लिए एक दांव और लगाया। अन्य उदीयमान साहित्यकारों के साथ वे भी साक्षात्कार हेतु उपस्थित हुए। सभी सम्पादकों ने अपने पुराने सरदर्द को पहचान लिया। परन्तु वे इनको उदीयमान साहित्यकारों के साथ देखकर भौंचक्के रह गये। क्योंकि उदीयमान साठ पार कर चुके थे। सठिया चुके थे। साथ ही बुढ़ापे से नाता जोड़ चुके थे। सम्पादकों को भौंचक्का देखकर उदीयमान ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय देते हुए फरमाया :

"शायद मुझे निकाल कर पछता रहे हैं आप।
महफिल में इस ख्याल से फिर आ गया हूँ मैं।।"

□□

कविरा आप ठगाइये...

प्रेमपत्र जब जब लिखे गये हैं उन्होंने दो युवा हृदयों के भीतर ही भीतर हलचल मचा दी है, फूटने को बेताब सुप्त ज्वालामुखी की तरह। प्रेम आँवले के फल की तरह होता है तुरन्त चखने पर कसैला परन्तु मुरब्बा डालने पर मिठास से भरा पूरा, विटामिन युक्त और स्वास्थ्यवर्धक। यह गर्मी में शीतलता प्रदान करता है। प्रेमी के शरीर में मिश्री की तरह घुलकर अपना असर दिखाता है। दूर-दूर रहने पर अपने कोमल स्वरूप को साकार करने वाला पत्र ही "प्रेमपत्र" कहलाता है। प्रेम जब भी प्रगट हुआ है उसने भूकम्प की तरह झटके दे देकर ऊँची-ऊँची हवेलियाँ हिला दी हैं। चाहे वे अनुकूल प्रभाव डालने वाले प्रेमपत्र हों या वे प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रेमपत्र हों। उन्होंने एक जैसा करिश्मा दिखाया है। दिन में तारे और रात को सूरज दिखाने की क्षमता प्रेमपत्रों की ही होती है।

पहले प्रेम राजकुँवरों और राजकुमारियों के बीच होता था। यदि किसी ने औकात भूलकर प्रेम किया अर्थात् प्रेमियों के बीच वर्गभेद या रंगभेद रूपी कीड़ा सामने नजर आया तो प्रेम का अंकुर फूटते ही बिनाका गीतमाला की तरह क्रमशः पायदानों पर चढ़ने की अपेक्षा छलांग लगाकर अव्वल आ जाता था। जो दिखलाई पड़ता था "गंधर्व विवाह" के रूप में। ऐसी स्थितियों को निर्मित करने में प्रेमपत्रों की भूमिका विशिष्ट हुआ करती थी। प्रेम तत्कालीन राजाओं और नर्तकियों के बीच भी होता था। राजा के मन में जब भी प्रेम का उबाल उठता था राजा प्रेमपत्र लिखता, दूत के हाथों भिजवाता और नर्तकी नंगे पाँव दौड़कर प्रेम करने पहुँच जाती थी वैसे ही जैसे कृष्ण अपने बाल सखा सुदामा से मिलने दौड़े थे और प्रेम शुरू हो जाता था। राजा का प्रेम उस राजतंत्र में बेशरम के पौधों की तरह

होता था। जिस ओर चरण पड़े जहाँ नजर मिली प्रेम हो गया। प्रेम में भूल होती थी, और धूल का फूल खिल जाता था, मुरझाने के लिये।

समयानुसार और कालानुसार प्रेमपत्र ने अपने रूप बदले हैं। कभी कविता में आता है तो कभी कहानी में। कभी हँसते हुए आता है विदूषक की तरह कभी आँसू ढरकाते हुए अबला जीवन की तरह तो कभी भी गुस्से में थरथराते हुए परशुराम की तरह आता है। प्रेमपत्र बहुरूपियों की तरह अपना पेट भरने के लिये नये नये स्वांग रचाते हैं और प्रेम जताते हैं। कभी आफिसर, स्टेनो टाइपिस्ट को प्रेमपत्र डिक्टेट कराते कराते अपनी बात रखते हैं। तो कभी काफी पुस्तकों के बीच प्रेमपत्रों की लुका छिपी का खेल आगे बढ़ता है। कभी-कभी सामूहिक प्रेमपत्र भी लिखे जाते हैं। छात्रनेता अनशन, बहिष्कार और हड़ताल का प्रेमपत्र देते हैं और उनकी लाइन क्लीयर हो जाती है। अर्थात् उस पर प्रेम से स्वीकृति की मुहर लगा दी जाती है क्योंकि ऐसे प्रेमपत्रों की अवहेलना अर्थात् सोते हुए शेर को ललकारना माना जाता है। हाँ कभी-कभी शेर न माने तो उसे गोली का शिकार बना ही देते हैं बन्दूकधारी शिकारी।

परीक्षा के दिनों में प्रेमपत्र उफनते हुए दूध की तरह ऊपर उठते जाते हैं। ऐसे प्रेमपत्र लिखने वाले गुमनाम रहते हैं फिर भी नाम लेते हैं। ये प्रेमपत्र प्रतिवर्ष नियमानुसार नये साल की ग्रीटिंग की तरह थोक के भाव में आते हैं और फिर रद्दी के भाव बेचे जाते हैं। ये प्रेमपत्र परीक्षक से नहीं वरन् परीक्षाफल से प्रेम करते हैं कर्म करो फल की इच्छा ना करो के विपरीत केवल फल की इच्छा करते हैं कर्म नहीं करते। कुछ अविस्मरणीय और अद्वितीय नमूने पाठकों को भेंट करता हूं अब ऐसे प्रेमपत्रों के।

एक बार प्रेमपत्र आया। लिखा था उन्होंने प्रेमपूर्वक। पढ़कर ऐसा ही लगा। सर आपके पास अपने गुरुजी रहे मेरा रोल नंबर है....है। मैं आपको पहचानता हूं आप मुझे नहीं जानते। जानने का प्रयास भी मत कीजियेगा। मैं यह भी जानता हूं कि इस बार कापियां आपके पास हैं। दण्डवत प्रणाम करता हूं। आशीर्वाद दीजिए। वैसे मेरी आदत इच्छा

भलाने की है। अक्ल साथ नहीं देती परन्तु डण्डा कभी भी धोखा नहीं देता। साये की तरह साथ रहता है। अच्छा पुनः एक बार प्रणाम करता हूँ दण्डवत। आशीर्वाद दीजिए।

दूसरे प्रेमपत्र की भाषा तो प्रेम रस में पूरी तरह लिपटी हुई थी। देखिए इस प्रेम पत्र की सत्य प्रतिलिपि।

बेटा! समझ लेना पिताजी ने ही पत्र लिखा है। रोल नम्बर इसलिए नहीं लिख रहा हूँ ताकि तुम मेरी पहचान न कर सको। रोल नम्बर का पूरा एक बण्डल किनारे लगा देना वर्ना छठी का दूध याद करा दूँगा। बुरा मत मानना। मेरी भाषा ही ऐसी है।

तीसरे प्रेमपत्र की झलक देखिए।

आपकी पदोन्नति होना ही चाहती है। चाहते हो अपनी पदोन्नति तो मेरी श्रेणी में उन्नति कीजिए अन्यथा घुमाते रहिये मनके मन की माला के। फोड़ते रहिये लड्डू मन ही मन बीते हुए तीन सालों की तरह। समझ जाइए मैं वही हूँ जिसने आपके पिछले सालों में भी दो प्रेमपत्र भिजवाये थे और आपने सवालब प्रेम से भरा हमारा हृदय टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। मैंने फिर से जोड़ लिया है उन टुकड़ों को, ये टुकड़े जुड़े रहेंगे तो पदोन्नति होती रहेगी। हमारा स्वभाव तो कुत्ते का है जो रोटी डालता है उसके वफादार होते हैं हम। आपके दरवाजे पर खड़े हैं।

चौथा प्रेमपत्र इस प्रकार था मेरे पिताजी कहते हैं कि बबुआ हो तो ऐसा हो। कुल का नाम रोशन कर दिया।

सच ही तो है। आपने अपनी कर्मठता अध्ययन, सदाचरण और सहयोग की भावना के बल पर ही इस कच्ची उम्र में इतना बड़ा पद प्राप्त किया है। हेड आफ डिपार्टमेंट और डीन बनने की खुशी में हमारी भी बधाई स्वीकारें। हमारे मित्र की एक बिटिया है। लाखों में एक। मैंने उसे तुम्हारे लिए चुना है। बेटा। वैसे तुम स्वयं समझदार हो। अंतिम निर्णय स्वयं से लेना। बस क्या कहूँ बेटा साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। सरस्वती जिह्वा पर बैठी है। गुणी इतनी कि शुरू से ही प्रथम श्रेणी पाती

रही है। इस वर्ष भी टॉप करेगी। युनिवर्सिटी में। देख लेना। खाना ऐसा बनाती है कि अंगुली ही नहीं अंगूठा भी चाटते रहो। गा भी लेती है। कुछ काम से वे लोग सपरिवार आपके शहर में आ रहे हैं अगले सप्ताह इस गाड़ी से। रिसीव कर लेना जैसा सहयोग चाहे तुम्हारी ओर से मिलेगा ही। न जमे तो शादी मत करना परन्तु शिष्टाचार और सहयोग से कोई कमी न होने पाये। सचमुच एक सप्ताह बाद की तिथि मैं भूल चुका था। स्टेशन नहीं पहुँच पाया रिसीव करने। लेकिन हृदय के कोने में कहीं न कहीं पत्र की चिंगारी तो थी ही। आग उगलती भरी दोपहरी में एक दिन कालबेल चीख उठी।

दरवाजा खोलते ही पसीने से तर बतर एक अपरिचित बुजुर्ग तथा उनके साथ एक २३-२४ वर्षीया तरुणी खड़ी थी। स्वभाविक शिष्टाचार वश मैंने कहा आइये। वे आये और ड्राइंगरूम में बैठकर इतमिनान से पसीना पोंछने लगे (मानो उनका स्वयं का घर हो) पसीना पोंछते हुये मेरी ओर मुखातिब होते हुये उन्होंने कहा, "बड़ी गर्मी है" क्या एक ग्लास पानी मिलेगा। मुझे कुछ शर्मिन्दगी महसूस हुई क्योंकि मैंने आतिथ्य की औपचारिकता नहीं निभायी थी। मैं लपक कर भीतर गया और तीन ग्लासों में रूह आफजा बना लाया। उन्होंने एक ग्लास स्वयं उठाया दूसरे के लिये तरुणी को इशारा किया और मुझसे कहा आप लीजिये ना। हम तीनों शर्बत पीने लगे, शर्बत पीने के तुरन्त बाद उन्होंने अपने कुरते के जेब से चाँदी का एक छोटा डब्बा निकाला। करीने से सजे हुए पान की गिलौरियाँ मेरी ओर बढ़ा दीं। मैं पान नहीं खाता पर संकोचवश उस दिन खा लिया मैंने।

उन्होंने शहद पगे स्वर में वार्तालाप शुरू किया। भाई साहब ने पिछले सप्ताह आपको पत्र लिखा था। इसी सिलसिले में आया था। सोचा आपसे मिलता चलूं। यह मेरी छोटी लड़की माधवी है। इसी वर्ष फिलासफी का अंतिम वर्ष है। अब तो इसके हाथ पीले करके छुट्टी पाना चाहता हूँ। तरुणी ने संकोच से मुस्कुराते हुए दोनों हाथ जोड़ दिए। मैंने भी प्रत्युत्तर

दिया। घंटे डेढ़ घंटे चर्चा होती है। एक दौर चाय का चला। तीन-चार दौर चांदी के डिब्बे के पान के चले। वे उठकर चलने लगे। प्रसन्नबदन. अशीष देते हुए। जुग-जुग जिओ। फूलो फलो। खूब आगे बढ़ो।

लगभग दो वर्ष बीत चुके हैं। लबालब प्रेम से भरे हृदय को भी मैंने नहीं छोड़ा है। मेरे अंतस में चिलचिलाती धूप सी तरुणी भी मेरिट में आ चुकी है। सुना था प्रेमपत्रों की निर्णायक भूमि असंदिग्ध रही है। अतः मैंने भी प्रेमपत्र लिखे पदोन्नति के लिए और फिर विवाह के लिए। कुत्ते का स्वभाव नहीं बदलता। पर आदमी का बदल चुका है। पदोन्नति किसी दूसरे की हो चुकी है। मेरिट में आने वाली तरुणी भी अन्यत्र शुभ विवाह रचा चुकी है। एक दिन भेंट होने पर कहने लगी। नमस्ते प्रोफेसर साहब।

मैंने पूछा कहो कैसी हो?

कहने लगी। मातृत्व लाभ में जुटी हूँ। आप सुनाइए। कैसा चल रहा है।

मैंने कहा सब ऊपर वाले की दया से ठीक चल रहा है और फिर सीधे उस ओर बढ़ गई जहाँ उनके पतिदेव स्कूटर लिए खड़े थे। वर्ष पर वर्ष बीतते आ रहे हैं। पेपर भी जाँच रहा हूँ। नये नये प्रेमपत्र भी पढ़ रहा हूँ। पढ़ते-पढ़ते सोचता हूँ—

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
कबिरा आप ठगाइये और न ठगियो कोय।

□□

ये साहित्यिक लठैत

"लाठी" जवांमर्दी की प्रतीक रही है। जमींदारों के रुतबे और उनकी शान-शौकत को बरकरार रखने में उनके लठैत हमेशा लाठी का जोर आजमाते हैं। मालगुजारों की उज्ज्वल कीर्ति ने लठैतों के बल पर ही आकाश चूमा है। बड़े-बूढ़ों के मुख से तत्कालीन लठैतों की बहादुरी के किस्से आप सुनने बैठिए। रात बीत जायेगी, पता भी न चलेगा। लठैतों के चमत्कार वे इतने रससिद्ध और प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि सुनने पर ऐसा लगता है कि कोई फिल्म देख रहे हैं। वे भावविभोर होकर उनकी बहादुरी की गाथा सुनाते हैं। वे बताते हैं जमींदार लठैतों के दम पर कैसे राज करते थे। अत्याचार करते थे। केवल चार-छः लठैतों की टीम पूरा का पूरा गाँव उजाड़ने की क्षमता रखती थी। जब चाहा तब खड़ी फसल काट ली। जिस पर नजर ठहरी, उसे दिनदहाड़े उठवा लिया। लाठी का जोर ही सब कुछ था। वह युग लाठी वाले हाथों का युग था। इसीलिए इस कहावत का जन्म हुआ—"जिसकी लाठी उसकी भैंस।"

अब यह युग कलम का युग है, कलम वाले हाथों का आज जमाना है। पत्रकार हो या लेखक—कलम का जोर सब मनवा लेते हैं। बुद्धिजीवियों की बढ़ती और चढ़ोतरी का युग है। साहित्यिक चर्चाओं, गोष्ठियों और शिविरों का माहौल गरम रहता है। जमकर लिखा जा रहा है। जिसे कहते हैं साहित्य। साहित्यकारों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि श्रोता और पाठक कम हो गए हैं। पचास लोग मिलकर प्रयोगधर्मी नाटक खेलते हैं तो देखने वालों की संख्या पच्चीस रहती है। उसके अतिरिक्त खूब कवि हैं ढेर सारे। कोई कहानीकार है तो कोई उपन्यासकार। कोई नाटककार है तो कोई व्यंग्यकार। स्थिति ऐसी है कि भीड़ में कंकड़ फेंकिये। जिसे लगेगा, वह साहित्यकार ही होगा। अब तो धन्नासेठों के लक्ष्मीपुत्रों को भी

कविता का शौक चर्राया है। घर वाले चिल्लाते रहते हैं—कवि के रूप में कुल कलंक पैदा हो गया। परन्तु साहबजादे साहित्य की सेवा में मस्त रहते हैं। वाहवाही करने चार साहित्यिक हमेशा साथ लगे रहते हैं। लगन बराबर बढ़ती जा रही है। ये अपने नये संग्रह के लिए एक साहित्यिक लठैत की खोज में हैं।

क्या कहा ? साहित्यिक लठैत।

हाँ, जी हाँ। साहित्यिक लठैत की खोज में हैं।

सुनिए साहब। साहित्यिक लठैत उन्हें कहते हैं जिनकी साहित्यिक जगत में तूती बोलती है।

साफ-साफ बताइए। पहेलियाँ मत बुझाइये।

तो सुनिए !....!! जिस प्रकार पहले जमींदारों और मालगुजारों का उत्थान-पतन उनके लठैतों पर रहता था, उसी प्रकार समकालीन साहित्यिक जगत में किसी भी साहित्यकार का उत्थान और पतन समीक्षकों की टोली पर निर्भर करता है। इन्हें ही चालू भाषा में साहित्यिक लठैत कहते हैं।

बात कुछ कुछ जमती है भाई।

पूरी बात तो सुनिए। जैसे जमींदारों के लठैतों की लाठियाँ आक्रमण के साथ-साथ समय पड़ने पर सुरक्षा भी अख्तियार करती थी, उसी प्रकार साहित्यिक लठैत विरोधियों पर जमकर आक्रमण करते हैं। और जब विरोधी खेमे से साहित्यिक लठैत किसी कृति की धज्जियाँ उड़ाते हैं, तो ये सुरक्षा कवच बनकर सामने आते हैं।

कहा जाता है कि यदि दिग्गज समीक्षक आपके पहले संग्रह पर अनुकूल टिप्पणी दो दें, तो देखते ही देखते आप साहित्याकाश पर चमकने वाले सितारे होंगे। आपकी तुलना तोड़ती पत्थर, ब्रह्मराक्षस, कामायनी, आँसू, कुरुक्षेत्र से होने लगेगी। लोग समझने लगेंगे कि एक दिव्य प्रतिभा का अवतरण सोहित्यिक जगत में हो चुका है। और यदि ये साहित्यिक लठैत नाराज हो गये तो आपके पचीसों संग्रह आने के बाद भी आप बौने ही रहेंगे और लगातार आकाश छूने के लिए फड़फड़ाते रहेंगे। एक दिन मैंने

अपने-अपने क्षेत्र के प्रख्यात तीन समीक्षकों से भेंट की। दो पंक्तियाँ उनको कागज पर लिखकर दी और कहा कि आप इन पंक्तियों की सजीव व्याख्या कीजिए। वे राजी हो गये। उनमें से एक थे—कथावाचक जो भक्तों की भीड़ के बीच हारमोनियम के माध्यम से कीर्तन भी कर रहे थे और सस्वर पाठ करने के बाद अपने ढंग से व्याख्या या समीक्षा करते जा रहे थे। भगवान अदृश्य है, सबकी सुनते हैं। सब कुछ करते हैं पर नजर नहीं आते। मैं तो दिन-रात उनके ही चरणों की वन्दना करता हूँ।

दूसरे नामी गिरामी विद्वान थे। उद्‌भट विद्वान, प्रकांड पंडित जैसे शब्द छोटे पड़ जाते हैं उनके सामने। हमेशा कार पर चलने वाले। शोषण के विरुद्ध नाम बुलंद करने वाले मार्क्सवाद में गहरी आस्था रखने वाले समीक्षक थे। वे जनसभा को संबोधित कर रहे थे। यह सही है कि मैंने गरीबी नहीं देखी। अभावों का दुख नहीं जाना। बचपन से ही वैभव के बीच रहा, लेकिन मजदूर हमारे भाई हैं। इनका दुख हमारा दुख है। उनकी माँगे हमारी माँगे हैं। उनके अधिकारों के लिए मैं आखिरी दम तक लड़ूँगा।

और तीसरे थे पुस्तकों के प्रेमी एक पढ़ाकू युवक। उभरते हुए कवि और समीक्षक के रूप में उनकी पहचान बन रही थी कि अचानक उनकी मंगनी हो गई। आज्ञाकारी पुत्र होने के कारण वे वाग्दत्ता को देखने भी नहीं गये। परन्तु अपनी इस प्रेयसी का भूत उन्होंने स्वयं के सर पर चढ़ा लिया। भावी पत्नी और वर्तमान प्रेमिका के प्रेम में मस्त होकर उन्होंने भी उन दो पंक्तियों की समीक्षा की जो मैंने उन्हें लिखकर दी।

तीनों जाने-माने समीक्षक थे। पंक्तियाँ वे ही थी परन्तु नजर अलग-अलग थी। पहले कथावाचक ने कहा—मैंने भगवान नहीं देखा पर उनका गुणगान करता हूँ। दूसरे कार वाले मार्क्सवादी ने कहा मैंने मजदूरी नहीं की गरीबी नहीं देखी लेकिन उसके लिये संघर्ष करता हूँ। और तीसरे पढ़ाकू युवक ने कहा अभी तक मैंने अपनी प्रेमिका को नहीं देखा तो क्या हुआ। तीनों साहित्यिक सर्जकों ने अपने-अपने ढंग से दो पंक्तियों की व्याख्या

की। पीछे से मिलता तो वे भी अपने ढंग से नई व्याख्या करते। इसीलिए तो कहता हूँ रचनाकारों से कि साहित्यिक लठैतों से न उलझें। अब आपको भी ये दो पंक्तियाँ समीक्षा हेतु परोस रहा हूँ :

उन पर हम जान देते हैं अनवर,
जिन्हें अब तक देखा नहीं है।

□□

गोष्ठी में गोते लगाइए

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना की दुलारी बेटी होती है "गोष्ठी"। चंदा की शीतलतायुक्त काव्य गोष्ठी या फिर सूरज सी तपती समीक्षा गोष्ठी। मिरचों की तरह तीखी, करेले की तरह कड़वी, आंवले की तरह स्वास्थ्यवर्धक-कसैली और सीताफल की तरह मीठी गोष्ठी का चलन खूब बढ़ा है।

आम आदमी मौज मस्ती के लिए किसी विशेष तिथि को विशेष स्थान पर भीड़ के रूप में इकट्ठे होते हैं तो उसे मेला कहा जाता है। इसी प्रकार जब आम आदमी के हितों का चिन्तन करते हुए बुद्धिजीवियों के रूप में स्थापितलब्ध और नये-नये पढ़ाकू इकट्ठे होकर अपनी मुर्गा की एक टाँग उठाकर प्रतिद्वंदी को ललकारते हैं और चोथी पछाड़ देते हैं तब उस वाक्‌युद्ध को गोष्ठी के नाम से जाना जाता है।

स्वयं का पेट काटकर हवन करते हुए हाथ जलाने वाली गोष्ठियों और प्रथम श्रेणी का किराया जेब में डालकर धीमे-धीमे मुस्कुराते हुए लौटाने वाली गोष्ठियाँ, दोनों के कर्णधार, आयोजक अपना-अपना झंडा फहराये विजय का सेहरा बांध दुदुंभी बजा रहे हैं। गोष्ठी अंधेरे मन में ज्ञान का दीपक जलाती है। कुंद और मोथरी सोच की धार तेज करती है। गोष्ठी किसी के लिए पाठशाला तो किसी के लिए अखाड़ा होती है। संवेदना, यथार्थ, दर्शन और संघर्ष के नये-नये पठ्ठों के जोड़ वजन के अनुसार लड़ाये जाते हैं। साहित्यिक पहलवान अपने-अपने दांवपेंचों द्वारा एक दूसरे को चित करने की होड़ में जुटे रहते हैं। छोटे-छोटे रथी अपने-अपने महारथी द्रोणाचार्यों से, आचार्यों से, कृपाचार्यों से दीक्षा ग्रहण करते हैं। ज्ञानचक्षु के खुलते ही टूटे-फूटे एक-दो वाक्य बोलकर अपनी पीठ ठुकवाते हैं। आजकल हिप्पी जिस तरह ब्राउन सुगर की खोज में भटकते हैं।

नवजात रंगकर्मी दूरदर्शन के पर्दे को, दूजवर दूल्हा अपनी नई नवेली दुल्हन को ललचाई नजरों से घूरता है वैसे ही नया लेखक गोष्ठी में अपने मुखारबिंद से फूलों की झड़ी लगाने को आतुर रहता है।

जिनका नाम उछलता है गोष्ठियों में उन्हें मन में मीठी-मीठी सुधियों की मकरन्द बिखेरती चली इठलाती प्रिया सी लगती है, और जिसका नाम निंदा पुराण के शब्दभेदी बाणों का लक्ष्य बनता है उस स्वनामधन्य लेखक के लिए आलोचक की आलोचना सहने के लिए मुस्कुराती हुई बुलेटप्रूफ विनम्रता ही उसे नया जीवन प्रदान करती है। दर्जन भर मिरची भजिया खाने के बाद सोंफ के सुख सी होती है, दर्जन भर आलोचकों की टिप्पणियां। कभी-कभी आलोचक ऐसा भी कहते हैं। मैंने पहली बार आपका नाम सुना, यह मेरी अज्ञानता है मैं बहुत बहुत क्षमाप्रार्थी हूँ।

रियाज अच्छा हो तो गोष्ठियों में मन इस तरह रमता है। मानों ब्लू फिल्म देख रहे हों, अन्यथा कला फिल्मों की तरह मृग मरीचिका सा मन भटकता है। जबकि वक्ताओं की वाग्धारा चेरापूंजी की तरह बरसती है। मानसूनी हवा बनकर श्रोताओं के हिमालयी उन्नत भाल से टकराकर! बारम्बार टकराकर! गोष्ठियों में धन और यश, भोजन और दारू के साथ ही मेल मिलाप भी होता रहता है। अनेक बुद्धिजीवी केवल इसी लालच में गोष्ठी को पिकनिक स्पॉट अथवा डिनर का आमंत्रण मानकर पहुँचते हैं। कहते भी हैं। चर्चे और परिचर्चा जैसी भी रही हो व्यवस्था बहुत उत्तम रही। सूप से श्री गणेश करते हुए खीर, हलुआ, मटरपनीर तो कोमा और मुर्ग मुसल्लम भी उच्चकोटि का और फिर भोजन के समापन समारोह में आईसक्रीम। आजकल तो बारात जाने पर लड़की का बाप भी ऐसा स्वागत सत्कार नहीं करता।

आइए एक गोष्ठी में आपको ले चलता हूँ।
मुख्य अतिथि व अध्यक्ष महोदय का स्वागत अभिनंदन।
तालियों की गड़गड़ाहट।

निष्णात विद्वान द्वारा एक चर्चा आधे घंटे तक कान बंद करके सभासद सुनते रहे।

गोष्ठी के लिए सज्जित मंच लगामहीन उन्मत्त घोड़ों की तरह कैसे रौंदा जाता है देखिए—

चर्चा का प्रारंभ—

वक्ता (१)—आलेख अच्छा है, परन्तु कुछ महत्वपूर्ण तथ्य छूट गये हैं। जिनका मैं बाद में उल्लेख करूँगा। आलेखकार की अन्वेषीवृत्ति हमें आशा बँधाती है।

वक्ता (२)—मित्रों! नयी जमीन तैयार हो रही है परन्तु तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है। शब्दों और अर्थों को लेकर आलेख-कार का भटकाव स्पष्ट है।

वक्ता (३)—भाईयों और बहनों! मैं अपनी बात बहुत शार्ट में कहूँगा। संस्कृति को नकारकर आलोचना आगे नहीं बढ़ सकती। बंदरिया जैसे मृत बच्चे को चिपकाए घूमती है वैसे ही आलेख में "कोटेशन" चिपका दिये गये हैं।

वक्ता (४)—आलेख प्रारंभ में ठीक है। बाद में भटक गया है। व्यापक विषय को रचनात्मक बावड़ी में समेट नहीं पाए फिर भी सार्थक प्रश्न उठाये गये हैं? रचनाकार स्वयं आलोचक होकर अनुभव में से व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभव चुनते हैं, जिसमें रचना का जन्म होता है।

वक्ता (५)—वे कवि भी थे। कहानीकार भी थे। आलोचक और उप-न्यासकार भी। नाटककार भी थे। सारी विधाएँ उनकी ॠणी हैं।

वक्ता (६)—भाषा भोग्या होती है। लेखक उसे वर्जिन (कुआंरी) बनाता है। आत्मताप द्वारा विकसित जीवनदृष्टि से रचीपची रचनाएँ हैं। जीवन और शास्त्र के बीच जो खाई थी उसे अपने चिंतन से पाटा है उन्होंने। पाने, खोजने और बीनने का अर्न्तद्वंद साफ नजर आता है।

वक्ता (७)—मैं अचानक ही पकड़ लिया गया। इसलिए अपनी आधी-अधूरी तैयारी के साथ आपके सामने हूँ। "रचना के प्रतिमान", काव्य का सौंदर्यशास्त्र कविता को समझने में, कविता को जानने में कविता को खुलासा करने में सहायक होता है। रचना प्रक्रिया की सघन जाँच पड़ताल करते हुए समग्र रूप में समझने में सौंदर्यशास्त्र सहयोग देता है। नई कविता की सौंदर्यदृष्टि और सामाजिक ऐक्य का समावेश हुआ है।

वक्ता (८)—हिंदी की अपनी कोई समीक्षा पद्धति नहीं है, यह या तो संस्कृत समीक्षा से दबी हुई है या अंग्रेजी समीक्षा से घायल है।

वक्ता (९)—(आक्रोश में) सच तो यह है कि, बित्ते भर का आदमी बाँस भर के आदमी की आलोचना कर रहा है। मैं इसलिए कुछ नहीं कहता क्योंकि अयोग्य को गाली देना भी उसका सम्मान करना है। सच तो यह है कि, हिन्दी में ऐसा महान चिंतक नहीं हुआ। समूचे हिन्दी साहित्य में जीवनदृष्टि से संवाद करते हुए वे अकेले हैं।

वक्ता (१०)—हिन्दी साहित्य में ऐसा काम पहली बार हुआ, जिसमें अति दूरदर्शिता के साथ-साथ वर्तमान की चिंता है। लेखक आस्था और विश्वास की चट्टान पर खड़ा हुआ है। जिससे वैचारिक संघर्ष को लगातार बल मिलता है। लगातार एक घंटे के वक्तव्य के बाद उन्होंने कहा अब दो-चार मुद्दों की बात कहकर मैं अपनी बात समाप्त करूँगा।

वक्ता (११)—साथियों! आलेखकार ने मुक्तिबोध और अज्ञेय की तुलना करते हुए मुक्तिबोध के विराट कैनवास और उनकी महानता को समझने में भूल की है। कहना न होगा कि, व्यक्तिमुखी चेतना के कारण "अज्ञेय" का व्यापक लेखन सामाजिक सरोकार से कटकर बौना है। बोन्साई द्वारा गमले में लगाया हुआ "बड़" और "पीपल" है। जबकि मुक्तिबोध ने यथार्थ और सामाजिक संघर्ष द्वारा अपना रचना संसार निर्मित किया है। उन्होंने जिस रचना की शुरुआत की वह जीवन के

सरोकार से भरी पूरी है। एकान्त उन्हें पसन्द था। परन्तु उस एकांत में पूरा जीवन, पूरा समाज, पूरा अनुभव मौजूद रहता है। मनुष्य की सही पहचान सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ उसके अकेलेपन द्वारा ही यह धारणा उन्होंने विकसित की। आलेखकार के पर्चे में कोई दम नहीं है।

इसी बीच आलेखकार ने गुस्से में तमतमाते हुए कहा, चिंतक और विचारक किसी पार्टी की बपौती नहीं है। चाहे वे मुक्तिबोध हों या निराला। "मोहन तो है सबका प्यारा रे" बात ये विश्वबन्धुत्व की करते हैं और उन पर अपनी मोनोपली जमाते है इससे बड़ी विसंगति और त्रासदी क्या हो सकती है।

आलेखकार को शांत करते हुए अध्यक्ष महोदय ने माइक की बागडोर अपने हाथ मे थामी।

एक कोने में आयोजक बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। पढ़े गये आलेख पर वाक्-युद्ध जारी है। बौद्धिक आसक्ति से ऊबकर बरामदे मे टहलते हुए कुछ इस तरह बतिया रहे है।....

पहला—उद्घाटन समारोह मे भगत ज़रा ज्यादा ही हो जाते हैं और यह बैकुंठ छोटा हो जाता है। नैतिक मूल्यों के लिये भाषण झाड़ने वाले कल रात कमरों में पी पीकर कुत्तों की तरह भौंक रहे थे। काबलियत के घमण्ड मे अपने आपको हिन्दी का खुदा समझ रहा है। सारे *बिम्ब, सारे रूपक,* सारी चेतना और सारी रचनाधर्मिता का बोझ अकेले उठाकर चलता है पट्ठा। सम्मिलित हँसी और और कुछ लम्बे ठहाके।

दूसरा—सैकड़ों गोष्ठियों में देख लिया। बस यही कहा जाता है। "आलेख अच्छा है।" फिर भी मेहनत द्वारा अधिक अच्छा बनाया जा सकता है।

तीसरा—अब यह चुगद संस्मरण सुनाये बगैर मानेगा नहीं। पी० एच० डी० और डी० लिट् का पुछल्ला लगते ही अपने आपको हिन्दी का

संवाहक समझते हैं। मसीहाई अन्दाज में बातें करते हैं।

चौथा—सब साले रटी रटायी शब्दावली में बोलते हैं। मौलिकता तो किसी में है ही नहीं। और न ही द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की समझ। बस वही एक राग "चम्पे की कनकलता की देह" की रट लगाते हैं।

पाँचवाँ—उदीयमान समीक्षक मस्का लगाते हुए हुँकारू भरता है। सच कहा दादा आपने बेवकूफी का कोई इलाज नहीं है लेकिन मूर्खता ही सबसे बड़ी मौलिकता है।

आइए। भीतर भव्य हॉल में चलें। यज्ञ में पूर्णाहुति अध्यक्षीय आसंदी से इस प्रकार शुरू हो रही है....

समय बहुत अधिक हो चुका है इसलिए गोष्ठी में जो अनेक मुद्दे उभरकर सामने आये हैं उन पर संक्षेप मे एकाग्र होकर अपने को व्यक्त करने की कोशिश करूँगा। ढेर सारे वक्ताओं को देख-सुनकर एक लघुकथा याद आ रही है "स्थानापन्न।" रचनाकार का नाम याद नहीं आ रहा। लघुकथा कुछ इस प्रकार थी....

"निराला जयन्ती बसन्त पंचमी के अवसर पर नगर की एक साहित्यिक संस्था ने एक वयोवृद्ध साहित्यकार के सम्मान का आयोजन कर अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। सम्मानित साहित्यकार ने अपने वक्तव्य "निराला" की महानता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। आयोजन के बाद उन्हें अपने घर के ड्राइंग रूम में अभिनन्दन-पत्र लगाना था। चारों ओर राजनेताओं, खिलाड़ियों और फिल्मी हस्तियों के चित्र टगे थे। अंततोगत्वा उन्होंने काफी सोच-विचार कर एक चित्र हटाकर उसके स्थान पर अपना अभिनन्दन-पत्र लगा दिया। हटाया गया चित्र महाकवि निराला का था।"

चोट खाए महारथियों को सलाम करते हुए अर्ज है—

आदमी नया हूँ,
मगर सावधान हूँ।

□□

बुढ़ापे की लाठी

महानता के अनेक प्रकार हैं। कुछ लोग सचमुच महान होते हैं। कुछ स्वभाव और प्रकृति से महानता की गोद में जा बैठते हैं। कुछ लोग जो मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा होते हैं, महानता पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोक कला व लोकगीतों की तरह हस्तांतरित होती है। कुछ धीरे-धीरे अपनी कर्मठता के बल पर महानता की ओर बढ़ते हैं। बहुत से ऐसे होते हैं जो महान तो नहीं होते परन्तु अपनी चालाकी और क्षुद्रता के बल पर अपने को महान सिद्ध करते हैं। कुछ महानता का ढोल पीटते रहते हैं। चालाकी और क्षुद्रता के बल पर अपने को महान सिद्ध करते हैं। खेल के मैदान से लेकर साहित्याकाश में महानता की होड़ में ढेर सारे लोग दौड़ते हैं। मुँह के बल गिरते हैं। फिर भी दौड़ते हैं। दौड़ना गति का लक्षण है। आशा और विश्वास की चमक उन्हें दौड़ने के लिए बाध्य करती है।

तिकड़मों के बीच नई-नई तिकड़मों और नई-नई योजनाओं के चक्र-व्यूह में स्वयं फँस जाते हैं। लगातार असफल होने पर "अंगूर खट्टे हैं" कहकर पीछे लौट जाते हैं और अग्रिम पंक्तियों में खड़े सफल लोगों की नुक्ताचीनी करते हुए अपनी महानता सिद्ध करते हैं। लोग भी रस ले लेकर सुनते हैं। बड़ा होने का सपना चटकीले रंग के समान नजर बाँध लेता है। एकबारगी घुमा जाता है। महान व्यक्तियों का बुढ़ापा सम्मान और शांति से कटता देखकर महानता को बुढ़ापे की लाठी मानने लगते हैं। बुढ़ापे की लाठी के लिए छीना झपटी वैसे ही करते हैं, जैसे नेता "कुर्सी" के लिए करते हैं। नाम कमाना चाहते हैं। इन्द्रधनुषी रंगों सी दूर दूर तक फैली है महानता।

कहते हैं—कवियों में बड़ा कवि वह जिसके नाम के पहले "राष्ट्रकवि" का विशेषण लगा हो। गद्यापचीसो की उम्र में रेखांकित करने योग्य वह जिसके नाम के पहले "युवा तुर्क" या फिर "युवा हृदय सम्राट" का

विशेषण लगा हो। मतलब यह कि महानता सिद्ध करने के लिए विशेषण जरूरी है। पहले विशेष के रूप में चिपकाया जाता था पूज्य श्री १००८.... या धूम रहती थी कर्मठ, त्यागी और दानवीर जैसे शब्दों की। अब विशेषण की मात्रा और गुणवत्ता दोनों बदली है क्योंकि ये विशेषण अपनी चमक खो चुके हैं! लगातार प्रयोग में आने के कारण घिस गये हैं। इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ते इस युग में अब पन्द्रहवीं और अठारहवीं सदी के विशेषण से काम नहीं चलेगा। अब तो नाना प्रकार के दूसरे विशेषण महानता सिद्ध करने के लिए जरूरी हो गये हैं।

साहित्य के बड़े-बड़े ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य परिषद के पुरस्कार छोटे पड़ने लगे हैं। अब इन पुरस्कारों से लेखक की महानता सिद्ध नहीं हो पाती। सुनते हैं, नोबल पुरस्कार की साख भी पहले जैसी नहीं रही। अब हिन्दी के रचनाकारों में महान वे माने जाते हैं जिनके नाम से बड़े-बड़े महत्व का आयोजन किया गया हो। जिनके हिस्से में स्वीकृति आई है, उनको अभी देर है। परन्तु मंजिल साफ नजर आ रही है उन्हें भी। इसके साथ ही लेखकों के बीच बड़ा लेखक वह माना जा रहा है जिसके नाम से ग्रंथावली छपकर आ गई हो।

ग्रंथावली में रचनाकार की सारी रचनात्मक ऊर्जा का समन्वय किया जाता है। कहना न होगा कि अधिकांश रचनाकार कवि, कहानीकार, नाटककार या व्यंग्यकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने के पहले कविता भी लिखता है, कहानी भी। कभी समीक्षा रूपी छुरी चलाता है तो कभी दूसरी विधाओं में भी हाथ-पाँव मारता है। प्रारंभ में बहुमुखी प्रतिभा की इमेज बनाना चाहता है परन्तु रचता रचता बेचारा अपनी गलतफहमी स्वयं दूर कर लेता है और किसी एक विधा में ही छवि निखारने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। परन्तु जब प्रकाशक ग्रंथावली छापने के लिए पहुँचता है और देखता है ग्रंथावली सुकटी सी दुबली-पतली ही बनेगी तो प्रकाशक अन्वेषक का कार्य भी करता है। ग्रंथावली को मोटा बनाने के लिए रचनाकार द्वारा लिखे गये पत्र, रचनाकार के पास आए हुए पत्र-ग्रंथावली में सम्मिलित

गुरु : ब्रह्मा

बड़े गुरु जी का नाम गड़बड़ानन्द प्रसाद सिंह है। आज गाँव में बड़े गुरुजी की धाक है। बड़े गुरुजी गाँव में सबसे अधिक पढ़े-लिखे हैं। गुरुजी बुजुर्ग और अनुभवी हैं। गाँव भर की चिट्ठी गुरुजी बाँटते हैं। गुरुजी गाँव के किसान हैं। बड़े गुरुजी अब गाँव के नेता जी हैं। पिछले ३० वर्षों से गाँव की सेवा कर रहे हैं गुरुजी।

कभी-कभी मौज में आने पर बताते हैं गुरुजी। मैं बचपन में बहुत गड़बड़ करता था। सीना फुलाकर कहते हैं—अट्टहास के बीच-आखिर ठाकुर हूँ न। इसलिये मेरे दादाजी ने मेरा नाम गड़बड़ प्रसाद सिंह रख दिया था। वही चला आ रहा है। जब ३० साल पहले इस गाँव में आया था बिल्कुल अकेला था। फिर यहीं शादी की। मैं तो जात-पात, छुआछूत मानता नहीं था। गाँधी जी का भक्त था। उनका उपदेश शिरोधार्य किया। गाँव की एक अछूत लड़की से विवाह रचाया। तुम लोग नहीं समझ सकते बेटा। ठाकुरों के बीच तब कितना बावेला मचा था। खैर। वह बात को आई गई हो गई। अब तो बच्चे बड़े-बड़े हो गये हैं। यहीं गाँव में जीवन भर रूखा खाकर मकान बनवाया। चार बीघा जमीन खरीदा। दो लड़कियों को ससुराल भेजा। एक लड़के को डॉक्टर बनाया, एक को इंजीनियर। दो छोटे लड़के खेती किसानी देखते हैं। सब के सब मेहनती हैं। अब बुढ़ापा आराम से कटेगा। लक्ष्मी सरस्वती दोनों की कृपा है।

बड़े गुरुजी की दिनचर्या अनोखी है। बड़े गुरुजी शुरू से ही खादीधारी थे और अब भी हैं। कुरता, टोपी और धोती पहले मटमैली हुआ करती थी। अब सफेद झक रहती है। पान के बेहद शौकीन हैं बड़े गुरुजी। बत्तीसी रंगी रहती है हरदम। कुरते की बड़ी जेब में पान और सुरती का डब्बा हमेशा साथ रहता है। गुरुजी ब्रह्म मुहूर्त में उठकर मुगदल घुमाते हैं।

करता है। रचनाकार की पहली कविता भी इस टिप्पणी के साथ सम्मिलित की जाती है कि चार दशक पूर्व पूत के पांव पालने में ही दिख गये थे। काट छांट, मांजने और जोड़ने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यदि रचनाकार के जीवनकाल में ही ग्रंथावली छपती है, तो उसके विचार और उसके इण्टरव्यू भी इनमें सम्मिलित किए जाते हैं। यदि वह दीन-दुनिया से उठ चुका है, स्वर्गीय या नरकीय हो चुका है तो किसी के पास सुरक्षित उसकी अंतिम थरथराहट भरी आवाज से विचार संकलित कर छापे जायेंगे। यह प्रकाशक के साथ-साथ रचनाकार के लिए भी जरूरी है। क्योंकि सवाल रायल्टी का है? दुबली-पतली ग्रंथावली कौन कितने में बेचेगा। स्लीम होना अच्छा है परन्तु उम्र के साथ-साथ चर्बी थोड़ी तो बढ़नी ही चाहिए।

जिंदगी भर हिंदी की सेवा की। साहित्यकार बनकर नाम रोशन किया। हालांकि परिवार वाले कुढ़ते रहे। पत्नी से लेकर बुजुर्ग तक सब के सब एक स्तर पर कुल कलंक मानकर कुनमुनाते रहे। रचनाकार ने पूरे जीवन भर दोनों वक्त भोजन के साथ ताने, व्यंग्यबाण, झिड़कियां और गालियां भी खायीं। परिवार में उपेक्षित रहकर लेखकों की दुनिया में सत्कार पाया। घूरे के दिन बदले। सामाजिक तौर पर सम्मानित हुआ है बेचारा। वही कुल कलंक रायल्टी के बल पर ठाठ से जीने लगा है। सरस्वती पुत्र अब छोटे-मोटे लक्ष्मीपुत्र सा भी होने लगा है। यह सब ग्रंथावली की माया है। लक्ष्मी अब सरस्वती पुत्रों से उतना बैर नहीं रखती कि खाने के लाले पड़े हों। ग्रंथावली बुढ़ापे की लाठी हो गई है। सीढ़ी हो गई है ऊपर चढ़ने की।

रचनाकारों को सपने में ग्रंथावली और ग्रंथावली के भावी प्रकाशक नजर आते हैं। युवा लेखक सपने में प्रेयसी के बदले प्रकाशक को ढूंढते हैं। जिसके पैर कब्र की ओर बढ़ रहे हैं और ग्रंथावली नहीं छप रही वह सोच रहा है :

लकड़ी जल कोयला भई, कोयला जल भयो राख।
मैं बैरन ऐसो जली, कोयला भई न राख॥

गुरु : ब्रह्मा

बड़े गुरु जी का नाम गड़बड़ानन्द प्रसाद सिंह है। आज गाँव में बड़े गुरुजी की धाक है। बड़े गुरुजी गाँव में सबसे अधिक पढ़े-लिखे हैं। गुरुजी बुजुर्ग और अनुभवी हैं। गाँव भर की चिट्ठी गुरुजी बाँटते हैं। गुरुजी गाँव के किसान हैं। बड़े गुरुजी अब गाँव के नेता जी हैं। पिछले ३० वर्षों से गाँव की सेवा कर रहे हैं गुरुजी।

कभी-कभी मौज में आने पर बताते हैं गुरुजी। मैं बचपन में बहुत गड़बड़ करता था। सीना फुलाकर कहते हैं—अट्टहास के बीच-आखिर ठाकुर हूँ न। इसलिये मेरे दादाजी ने मेरा नाम गड़बड़ प्रसाद सिंह रख दिया था। वही चला आ रहा है। जब ३० साल पहले इस गाँव में आया था बिल्कुल अकेला था। फिर यहीं शादी की। मैं तो जात-पात, छुआछूत मानता नहीं था। गाँधी जी का भक्त था। उनका उपदेश शिरोधार्य किया। गाँव की एक अछूत लड़की से विवाह रचाया। तुम लोग नहीं समझ सकते बेटा। ठाकुरों के बीच तब कितना बावेला मचा था। खैर। यह बात की आई गई हो गई। अब तो बच्चे बड़े-बड़े हो गये हैं। यहीं गाँव में जीवन भर रूखा खाकर मकान बनवाया। चार बीघा जमीन खरीदा। दो लड़कियों को ससुराल भेजा। एक लड़के को डॉक्टर बनाया, एक को इंजीनियर। दो छोटे लड़के खेती किसानी देखते हैं। सब के सब मेहनती हैं। अब बुढ़ापा आराम से कटेगा। लक्ष्मी सरस्वती दोनों की कृपा है।

बड़े गुरुजी की दिनचर्या अनोखी है। बड़े गुरुजी शुरू से ही खादीधारी थे और अब भी हैं। कुरता, टोपी और धोती पहले मटमैली हुआ करती थी। अब सफेद झक्क रहती है। पान के बेहद शौकीन हैं बड़े गुरुजी। बत्तीसी रंगी रहती है हरदम। कुरते की बड़ी जेब में पान और सुरती का डब्बा हमेशा साथ रहता है। गुरुजी ब्रह्म मुहूर्त में उठकर मुगदल घुमाते हैं। फिर

अपने खेतों की ओर टहलते हुए हवाखोरी से अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करते हैं। चपरासी और स्कूल के छोटे गुरुजी बारी-बारी से बड़े गुरुजी के खेतों की देखभाल करते हैं। वहीं दो बड़ी गाए है। दूध-दही की मौज रहती है।

गाँव में स्कूल का खुलना और बन्द होना बड़े गुरुजी के साथ-साथ चलता है। स्कूल की चाबियों का गुच्छा गुरुजी की धोती के एक छोर से बँध कर कंधे पर पड़ा रहता है। जब तक बड़े गुरुजी स्कूल नहीं पहुँचते, तब तक सब बाहर खड़े रहते हैं। दोपहर, भोजन के बाद १२ बजे बाद बड़े गुरुजी स्कूल आते हैं। चाबियाँ कंधे से उतार कर स्कूल खोलते है। बड़े गुरुजी स्कूल का प्रारम्भ करते ही अपनी थकान मिटाना प्रारम्भ करते हैं। स्कूल की एकमात्र टेबल पर पैर फैलाकर कुर्सी से टिककर सोना बड़े गुरुजी की पुरानी आदत है। ३ बजे तक गुरुजी जागते हैं। उसके बाद स्कूल में ही गाँव की छोटी-मोटी चौपाल लगती है। कभी चिट्ठी पढ़ते है गाँव वालों की, कभी समझौता कराते हैं।

गाँव की विकास की योजना बनाते हैं। अपने एक छोटे बक्से से बड़े गुरुजी मरीजों को वही दवाई देते हैं। स्वमूत्रपान को बड़े गुरुजी हर बीमारी के लिये औषधि मानते हैं। इसे वे आँखों के लिए अंजन कहते हैं। दाँतों की मजबूती के लिए इससे अच्छा मंजन कोई नहीं है, ऐसा गुरुजी बताते हैं और अपनी बत्तीसी दिखाते हैं। कभी चार कभी पाँच बजे घंटी टन-टन बजती है। बड़े गुरुजी फिर अपने खेतों का एक चक्कर लगाते हैं। रात को गाँव के सरपंच के यहाँ बैठक जमती है। सरपंच गुरुजी को बहुत मानते हैं। अतिथि सत्कार का गुण सरपंच को खानदान से मिला है। बड़े गुरुजी की जमकर आवभगत होती है। रात में कभी रामायण कभी हरि कीर्तन कभी गम्मत तो कभी नाच-गाने का कार्यक्रम जमता है। आधी रात तक गुरुजी घर लौटते हैं।

गाँव के भारतीय फिल्मों के नायक की तरह गुरुजी को भी सर्वगुण सम्पन्न ही नहीं सर्वशक्तिमान मान लिया गया है। "राष्ट्र निर्माता"

का लेबल चिपकाए गुरुजी गदगद हैं। गुरुजी ने स्कूल के नये भवन का उद्‌घाटन मंत्री महोदय से करवाया था, अब स्कूल की दीवारों में दरारें ही दरारें हैं। फिर भी गुरुजी कहते हैं कि चिंता की कोई बात नहीं। बड़े गुरुजी बताते हैं—स्कूल के ब्लेकबोर्ड अब सफेद हो गये हैं। चाक भी खत्म हो गई। बड़े गुरुजी समाजवाद और इक्कीसवीं सदी के गहरे पक्षधर हैं। वे कहते हैं—चाक समाप्त हो गयी तो भी चलेगा। नक्शे फट गये और पुस्तकों को दीमकों ने पचा लिया यह भी बहुत अच्छा हुआ। प्रत्येक जीव पर दया हमारी संस्कृति का मूलमन्त्र है। स्वयं अँधेरे में रहकर बच्चों को प्रकाश की ओर ले जाने वाले गुरुजी के लिए पुस्तकों का युग बीत गया। हमारे प्रधानमंत्री राजीव गांधी स्कूल में टी. वी. और कम्प्यूटर की व्यवस्था करवा रहे हैं। उन्हें राजीव गांधी बहुत पसंद हैं क्योंकि राजीव गांधी के साथ गांधी शब्द जुड़ा हुआ है। और वे गांधी के परम भक्त हैं। अब टेप रिकार्डर द्वारा व्याख्यान होंगे। कम्प्यूटर हर कदम पर हमारा साथी होगा। गुरुजी अब कभी-कभी चौक में भाषण भी देते हैं। वे कहते हैं अपने मुखारविन्दु से। इक्कीसवीं सदी एक नवीन युग होगा, दुनिया में अब न दरिद्रता होगी न दीनता होगी न कभी दुर्भिक्ष पड़ेगा।

बड़े गुरुजी रिटायर हो गए। अब स्कूल की चाबी के गुच्छे का स्थान बदल गया। गुरुजी अब स्कूल के बदले अपने धर्मार्थ औषधालय में बैठने लगे। दिन भर गांव के लोगों का दुख-दर्द सुनते हैं, चिट्‌ठी बांचते हैं, दवाई देते हैं। धीरे-धीरे गांव में प्राइवेट कालेज खुलने की चर्चा चली। अचानक पता चला बड़े गुरुजी कालेज के प्रिंसपल बन गये। स्कूल में ही सन्ध्या समय कालेज लगने लगा। गुरुजी का रंग फिर जमने लगा। गुरुजी अब शिक्षाशास्त्री हो गए। दूर-दूर से बुलावा आने लगा। गुरुजी शिक्षा में क्रियात्मक ज्ञान के प्रेरणा स्रोत बने। विशेषकर खेती किसानी के क्षेत्रों में बड़े गुरुजी कहते हैं। हम असली काम कर रहे हैं। ठोस भूमि तैयार कर रहे हैं। प्लास्टिक की हरी पत्ती और रंग-बिरंगे फूलों से काम नहीं निकालना है। बगीचा हरा-भरा बनाना है। दौड़धूप जारी है। गार्डनिंग

है। एस० यू० पी० डब्ल्यू० है। बड़े गुरुजी की बातें सुन-सुनकर दिमागी मैदान से अनचाहे झाड़ झंखाड़ उखाड़कर फेंकते हुये सोचता हूँ।

सच्चाई छुप नहीं सकती, बनावट के उसूलों से।
खुशबू आ नही सकती, कभी कागज के फूलों से।।

□□

ट्यूशन उद्योग विकास संघ

बड़ी-बड़ी चिमनी वाले उद्योगों ने कुटीर उद्योगों को लगातार ठंडा पिला-पिलाकर डबल निमोनिया के पास पहुँचा दिया है। लेकिन ट्यूशन रूपी कुटीर उद्योग दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहा है। इस उद्योग ने लक्ष्मी और सरस्वती के सदियों पुराने बैर को तोड़कर मित्रता और बहनापे की संधि पर हस्ताक्षर करवा दिए हैं। आजकल गुरुजी को सबसे अधिक गौरव और ऊँचाई प्रदान की है "ट्यूशन" की महिमा ने। आप जानते ही हैं कालचक्र के पहिए के साथ-साथ शब्दों के अर्थ एवं भाव बदलते रहते हैं। प्राचीन काल में गुरुकुलों की शिक्षा भी ट्यूशन का प्रारंभिक स्वरूप थी। तब ट्यूशन का उपयोग विद्यार्थी अपने ज्ञानदीप को प्रज्वलित करने के लिए करता था। अब समय बदला है। "ट्यूशन" ने विकास की कई मंजिलें पार की हैं। परीक्षा में पास होने के ठेके का ही दूसरा नाम "ट्यूशन" है। ठीक भी तो है। जब तक ठेका न हो, वांछित प्रतिफल न मिले—तब तक गार्जियन समय और पैसा क्यों जाया करेगा। इस हाथ देकर उस हाथ लेने का युग है। संतुलन और समीकरण द्वारा सब के सब सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। कृष्ण की गीता का संदेश "कर्मण्येवाधिकारस्ते·····"केवल पढ़ने और स्वर्णाक्षरों में मढ़वाकर दीवार पर शोभा बढ़ाने के लिए है। सफलता उनके ही कदम चूमती है, जो कर्म के साथ-साथ फल की इच्छा रखते हैं, "फल" तोड़ने के लिए प्रयत्न करते हैं। और यही उच्चकोटि का कार्य विद्यार्थी करते हैं। गार्जियन भी फल की इच्छा करते हैं "ट्यूशन" पढ़ाते हैं। गुरुजी को आदर देते हैं। आस्था का दीप नहीं वरन ट्यूब लाइट जलाते हैं। उसकी दुधिया रोशनी में बच्चों का भविष्य सँवारते हैं।

ट्यूशन ने अब एक लघु उद्योग का रूप धारण कर लिया बस पर अच्छे-अच्छे तर जाते हैं। ट्यूशन रूपी नाव में बैठकर

भी वैतरणी पार कर लेते हैं। जिस तरह राजनीति में पिता के बाद पुत्र, पति के बाद पत्नी, ससुर के बाद दामाद और भाई के बाद भाई नेता बनकर देश की सेवा में अपना जीवन खपा-खपा देते हैं। पारिवारिक सहयोग से नीतियों का निर्धारण करते हैं। सहकारिता की भावना का पूरी तरह विकास करते हुए परिवार के प्रमुख सदस्यों के बीच अधिकारों का विकेन्द्रीकरण करते हैं। उसी प्रकार अब "ट्यूशन" ने अपनी करामात दिखलाई है। गुरुजी के परिवार में भी अब आपसी सहयोग का नया रूप देखा जा सकता है। समाजशास्त्रियों के लिए यह शोध का विषय है। अर्थशास्त्री इसके माध्यम से माँग और पूर्ति का सिद्धांत बहुत सरलतापूर्वक व्याख्यायित कर सकते हैं। हिंदी वाले लोकोक्ति और मुहावरे (वक्त पड़े बांका तो गधे को कहो काका) का साक्षात् रूप दिखाकर अपनी विद्वता प्रमाणित कर सकते हैं। "ट्यूशन उद्योग विकास संघ" में गुरुजी तो लगे ही रहते हैं। उनके साथ उनकी २० वर्ष पूर्व की आठवीं पास पत्नी भी बड़े मनोयोग से सहयोग देती है। बी० ए० फेल बेरोजगार पुत्र को धक्के खाने और न्यूज पेपर में रोजगार खोजने के बदले अच्छा खासा रोजगार मिल जाता है। आठ वर्षीय बबलू दौड़-दौड़कर सबको पानी पिलाता है। कभी-कभी पास की दुकान से पान भी ला देता है। इस प्रकार "ट्यूशन उद्योग विकास संघ" के उत्थान के लिए सब के सब परीक्षा रूपी अर्थी को कंधा देने के लिए जी जान से जुटे हुए हैं। बारी-बारी से अपना कंधा देते हुए एक बार फिर यह प्रमाणित करते हैं कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

पुस्तकों का हरा-भरा पहाड़ रचा गया है जिसमें सुरंग बनाकर विद्यार्थी को स्वयं निकलना है। जो नहीं निकल पाते वे पहाड़ के ऊपर होली बसाते हैं। ठेके की दुनिया में व्यापक धूम मचा दी है पुस्तक छापने वालों ने। वन डे सीरीज, विजय श्री, श्योर सक्सेस, दुर्लभ, गारंटी, सुपर, वन वीक रीडिंग और नाइट स्टार जैसे सुभावने शीर्षक सफलता का ठेका चीख-चीख कर देते हैं। चतुर और अनुभवी तो इनके सहारे पार लग जाते हैं परंतु कमजोर हृदय वाले घबड़ाते हैं। डूबने के भय से बचने के लिए वे

"ट्यूशन रूपी स्टीमर" में बैठकर चैन की बंशी बजाते हैं।

स्कूलों और कालेजों में ऐसे छात्र कभी-कभी दर्शन लाभ देते हुए आचार्यों पर कृपा करते हैं। परंतु घरों में उनकी नियमितता का क्रम कभी नहीं टूटता। एक कमरा पूरी तरह उनके लिए रिजर्व रहता है ताकि वे शांतिपूर्वक इच्छानुसार ट्यूशन का आनंद उठा सकें। मारधाड़ से ओतप्रोत अभिराम बच्चन की ओर श्रीदेवी की गुदगुदाने वाली रंगीन फिल्मों में ओपनिंग शो की तरह ट्यूशन रूपी फिल्म प्रतिदिन हाउसफुल रहती है। जिस ओर देखो उस ओर "एड्स" से भी भयंकर इस महामारी की जय जयकार हो रही है।

इसकी लोकप्रियता को देखते हुए इस नये उद्योग के फलने-फूलने के पर्याप्त अवसर हैं। अपनी विकास यात्रा में इसने कुटीर उद्योग से लघु उद्योग तक की यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण कर ली है। अब ट्यूशन उद्योग को बड़े पैमाने के विशालकाय उद्योगों की श्रेणी तक पहुँचाना इसके अभिभावकों का कर्तव्य है। आवश्यकता है इसकी उन्नति के लिए एक संघ बनाने की। यह "ट्यूशन उद्योग विकास संघ" सबकी सहायता करे। इसका प्रतिनिधि मंडल केन्द्र और राज्य सरकार के सम्मुख अपनी माँग प्रस्तुत करे। सबका विकास करें। कुटीर उद्योगों को जिस प्रकार आर्थिक अनुदान दिए जाते हैं उसी प्रकार ट्यूशन उद्योग को भी बहुत कम ब्याज की दर पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान किया जाये। क्योंकि सबसे अधिक गारंटी शतप्रतिशत की ये ही देते हैं। इन सबका कहना है सहायक सामग्री और श्यामपट के बिना ही हम शिक्षा में गुणात्मक विकास कर रहे हैं। अनुदान मिलने पर विकास की गति अधिक तीव्र होगी। विद्यार्थियों के संकट को दूर करने में तत्पर गुरुजी प्रतिदिन ट्यूशन का पाठ गांधी जी के इस प्रिय भजन के साथ प्रारंभ करते हैं :

वैष्णव जन तो तेने कहिए।
जे पीर पराई जाणे रे।

□□

और डिमोशन हो गया

आज नारियल पर नारियल फोड़े जा रहे हैं। आज होली भी है, ईद भी है, बड़ा दिन भी है, और दीवाली भी है। आज छोटे से लेकर लम्बे तक सब के सब गद्‌गद् हैं। कुछ लोगों के लिए पासीदास जयंती है तो कुछ लोग आज इसे अपना दूसरा जन्म दिन मना रहे हैं। कुछ लोग मौत के मुँह से निकलकर आ गये हैं। सब एक दूसरे को बधाइयाँ बाँट रहे हैं। थोक के भाव में मिठाइयाँ बाँट रहे हैं। भारत की धर्म-निरपेक्षता आज अपने सही स्वरूप में अंगड़ाई लेकर सुबह-सुबह जागी है। सर्वधा सम्भाव का दृश्य आज सभी स्कूलों में साकार हो उठा है। आज हजारों-लाखों के लिए फैसले का दिन होता है। कोई रोते हुए घर जाता था, पर आज सब के सब प्रसन्न बदन घर जा रहे हैं क्योंकि आज ३० अप्रेल है। सबको जनरल प्रमोशन मिल गया है। फिसड्डी से फिसड्डी भी आगे की कक्षा में पहुँच गया है आज हिन्दू, मुस्लिम, सिख इसाई, सेड्यूल कास्ट, सेड्यूल ट्राईब, सब के सब खुशियाँ मना रहे हैं क्योंकि उनके बच्चे पास हो गये हैं। उनकी वर्ष भर की चिंता का जनाजा निकल चुका है। आज का दिन भाई-चारे का दिन है। फ्रांस की राज्य क्रांति के समता और बंधुता के नारे को और रूस की क्रांति के समाजवाद को भी पीछे छोड़कर मध्य प्रदेश के शिक्षा जगत में एक ऐतिहासिक क्रांति हुई है—जिसका नाम है "जनरल प्रमोशन" बिना भेदभाव के सम-दृष्टि के आधार पर सभी का जनरल प्रमोशन कर दिया गया है। घोषणा तो बहुत पहले हो चुकी थी परन्तु उसका क्रियान्वयन आज हुआ है। छात्रों के हाथ में उत्तीर्ण होने के प्रमाण-पत्र आ चुके हैं और सही मायने में जनरल प्रमोशन पर मोहर लग चुकी है। बालक हर्षातिरेक में डूबे हैं, मास्टरों के चक्कर लगाने से बच गये। ट्यूशन के शिकंजे से छूट गये। हर्रा लगा न फिटकरी लगी, और रंग चोखा हो गया। कुछ का जनरल

प्रमोशन हो तो कुछ का डिमोशन भी हो गया है। डिमोशन के घेरे में आने वाले भीतरी चोट खा चुके हैं फिर भी मुस्करा रहे हैं ऊपर ऊपर, क्या करें? मजबूरी है।

छोटे-बड़े प्रकाशकों के, गेस पेपर छापने वालों के, गाईड छापने वालों के, श्योर सक्सेस वालों के और गारंटी लेकर पास कराने वालों के करम फूट गये हैं। वार्षिक परीक्षा के पेपर छापने वाले भी ताकते रह गये। बेचने वालों के हाथों के तोते उड़ गये। सब के सब सर पर हाथ धर के बैठे हैं। नई-नई शिक्षा पद्धति थी, नया-नया माहौल था, पौबारह की उम्मीद थी। क्या किया जावे? पासा उलटा पड़ गया। हण्ड्रेड परसेण्ट सीधे-सीधे जीरों में बदल गया। कहा जाता है ना पीठ पर लात बर्दाश्त हो जाती है, पेट पर नहीं होती। परन्तु जनरल प्रमोशन क्या हुआ बहुतों का डिमोशन हो गया। प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं, एजेन्टों के साथ-साथ मास्टरों के पेट पर ही ऐसी लात लगी की वे अभी तक सहला रहे हैं। कुछ अमृतांजन लगा रहे हैं तो कुछ तो बेरलगन खा रहे हैं, तो कुछ लोग को डिसेन्ट्री की शिकायत हो गई हैं। जिसको जैसे मार पड़ी है वह उतना ही कराह रहा है। राजा के अगाड़ी और घोड़े के पिछाड़ी रहने पर ऐसा ही होता है, वैसे सब मुस्कराते हुए कहते हैं, चलो इस बार पेपर सेट करने से और फिर जाँचने से और फिर टेबूलेशन करने से छुट्टी मिली। इस साल बड़ा आराम है। परन्तु उनकी आत्मा जानती है कि इस मुस्कराहट और इस आराम के पीछे कैसा दुःख का पहाड़ और असंतोष का ज्वालामुखी छिपा हुआ है। पर क्या करें? आदत आदमी को पालतू बना देती है। तोता भी मालिक की भाषा में बोलता है। कुत्ता भी मालिक की इच्छानुसार भौंकता है। सब अपना-अपना काम बड़ी नफासत से करते हुए जुटे हैं। फिर भी फुटफुसाहट तो चल ही रही है। एक-दूसरे का दुःख कान से मुँह सटाकर कह रहे हैं। स्कूलों में जनरल प्रमोशन, ट्यूशन, डिमोशन और बजट पर चर्चा जोरों पर है।

एक गुरुजी कह रहे थे सच पूछो तो शिक्षा की जड़ें हिल गई हैं।

विद्यार्थी स्कूलों में तो जाते ही नहीं। थोड़ा बहुत ट्यूशन से ही ज्ञान प्राप्त करते थे, सो ट्यूशन की अर्थी ही निकलवा दी, इस जनरल प्रमोशन ने। अब घर में बैठे हताश व निराश शिक्षक क्या करें ? या तो बुढ़ाती पत्नि से प्रेम की पेंगें बढ़ाए और दिल को तसल्ली दें, या कोसते रहें जिसे चाहे। नाम ले-ले कर कोसें। कमरे के भीतर गालियां देंगे तो उनका कोई बिगाड़ सकता है। गुरुजी कह रहे थे, बजट सबका भला करता है। बजट तो राम-बाण औषधि है। निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, उच्च-मध्यम वर्ग उच्चवर्ग और यहां तक की *भिखमंगों को भी प्रसन्न करता* है। व्यापारी कीमत बढ़ने से प्रसन्न होते हैं, और आम आदमी मँहगाई की धीमी गति देखकर प्रसन्न होता है। प्रसन्न सब होते हैं। परन्तु जनरल प्रमोशन से गुरुजी का बजट फेल हो गया। बजट की रायल्टी और महत्ता और उसकी ऊँचाई किसी से आँकी जा सकती है को रिकार्ड तोड़ने की गति से काम किया गया।

गुरुजी कहें या मास्टर। सम्मान करना चाहें तो प्रोफेसर साहब कहिये। आपस में बतिया रहे हैं। भट्टा बैठ गया यार इस बार तो। सीजन सूखा निकल गया। पूरा का पूरा बजट फेल हो गया। रोज पत्नी के व्यंग बाणों से बिंधा जा रहा हूं। सोचा था इस बार की गर्मी में तपना नहीं पड़ेगा। ट्यूशन की सनासन वर्षा से कूलर की ठंडी-ठंडी हवा का मजा लेंगे। पत्नी प्यार से सहलायेगी भी परन्तु हाय री तकदीर सब गुड़ गोबर हो गया। जनरल प्रमोशन क्या हुआ, ट्यूशन से जो चमकाना चाहते थे तकदीर वो साझे की हांडी की तरह सरे आम चौक पर फूट गई।

गुरुजी आपस में चर्चा कर रहे हैं, चलो यार आज सामूहिक रूप से मातम मनायें क्योंकि आज ३० अप्रेल है। सब के सब जनरल प्रमोशन में पास हो गये और हम सब का डिमोशन हो गया। ट्यूशन रूपी खीर-पूड़ी तो पहले ही सपना हो चुकी थी, अब गर्मी की सुदर्शन पानी भी जाती ..। कुछ लड़के जो सप्लीमेन्ट्री पाते थे, कम से कम दो महीने तो

सेवा करते ही थे। गर्मी की दो मास छुट्टियों में भी तरावट बनी रहती थी, और हमारा सत्रावासन ३० अप्रेल के बदले ३० जून को होता था परन्तु इस बार धोखा खा गये। सप्लीमेन्ट्री तो बहाना होती थी। मौका बार-बार देने की हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता से सब अपना-अपना पेट पालने का प्रयास करते थे। अब श्योर "सक्सेस में से हायर सेकेण्ड्री के प्रश्न छप्पर फाड़कर सीधे झोली में आते जा रहे हैं तो सप्लीमेन्ट्री की जरूरत भी नहीं पड़ी सारे के सारे लड़के सीना तान कर स्कूल से लौट रहे हैं। ताली पीट-पीट कर मजा ले रहे हैं—

गुरुजी गुरुजी चाम चुटियाँ।
गुरुजी मरगे उठा खटिया ॥

□□

दंगल : परीक्षा केसरी का

परीक्षा दुधारी तलवार है। वह अपनी चमक से दोनों को चमकाती रहती है। परीक्षक को भी, परीक्षार्थी को भी। दोनों मन ही मन उससे बचना चाहते हैं परन्तु दोनों उसके शिकंजे में कैद अपने-अपने ढंग से। दोनों घबराते हैं इसके नाम से। एक को डर रहता है कि वह परीक्षा में फेल न हो जाय तो दूसरे को दूसरा डर रहता है कि वह फेल करने पर सरेआम पीटा न जावे। परीक्षा हल रूपी मैदाने-जंग में परीक्षा केशरी के इस दंगल मे हिन्द केशरी और रुस्तमे हिन्दी जैसे दंगल मारने वालों के भी छक्के छूट जाते हैं। दोनों ओर के पहलवानों को दिन में भी तारे नजर आते हैं। फिर भी प्रतिवर्ष ये दंगल होते ही हैं। माई के लाल उतरते हैं, अपनी-अपनी ताकत आजमाते हैं। बस जोड़े बदलते रहते हैं पर उद्देश्य एकमात्र वही होता है। किसी तरह धोबी पछाड़ लगावें और दंगल जीत कर विश्व सुन्दरी की तरह गौरवान्वित हो सकें। फोटो न छपे न सही परन्तु आस-पास से लेकर दूर-दराज के विशिष्ट क्षेत्रों में नाम का डंका तो बज ही जाता है। छोटे पहलवान इतना भोग पाकर संतुष्ट हो जाते हैं।

कहते हैं इतिहास अपने को दुहराता है और कहीं इतिहास अपने को दुहरावे या न दुहरावे परन्तु महाभारत का इतिहास इस परीक्षा केशरी के दंगल में जरूर दुहराया जाता है। अर्जुन और द्रोणाचार्य की तरह ही आधुनिक गुरु-शिष्य, युग के सत्य एवं अपनी आवश्यकताओं के अनुसार तैयारी करते हैं। अपनी प्राचीन उदात्त एवं तेजस्वी संस्कृति की रक्षा के लिए कटिबद्ध अपनी परम्परा का निर्वाह करते हुये ताल ठोंक कर एक दूसरे के सामने डट जाते हैं। अपनी अस्मिता की रक्षा के ये दोनों परीक्षा रूपी धर्म युद्ध के लिए तैयार रहते हैं। दोनों पक्षों के

ज्ञान-चक्षु खुल चुके हैं अतः उपदेश के लिए किसी कृष्ण की आवश्यकता नहीं रहती और दोनों ही अपने-अपने चक्रव्यूह की रचना इस ढंग से करते हैं कि वह अन्त तक अभेद्य बना रहे।

मजे की बात यह है कि इस दंगल की तैयारी दोनों पक्ष उतने जोर-शोर से करते हैं कि साठे को पार चुके पाठे पर विजयी अमरीकी राष्ट्रपति रीगन की कूटनीति भी उनके सामने बौनी लगने लगती है। परीक्षा प्रारम्भ होने के कुछ समय पूर्व ही अधिकांश विद्यालय/महाविद्यालय के प्राचार्य/वरिष्ठ गुरुजन एवं प्रोफेसर्स अपने भाषण में (जो विरोधी पार्टी के उखड़े हुए उस नेता की तरह होता है जो पुनः जमना चाहता है) यह कहते हुए पाये जाते हैं—

प्यारे छात्रों/विद्यार्थियों/दोस्तो,

आप सब इस विद्यालय की गौरवशाली परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। हमें गर्व है कि इस महाविद्यालय ने देश को एक सक्षम प्रशासन एवं प्रदेश को एक मुख्यमंत्री सौंपा है। इस विद्यालय से पढ़कर निकले हुए भूतपूर्व छात्र आज महान नेता बन चुके हैं। अनेकों बार मंत्री के पद को सुशोभित कर चुके हैं। उनके जीवन के अंतिम चरण में हमें अब उनमें राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री बनने की संभावना के भी दर्शन होते हैं। आज जब कि दूसरे स्कूलों एवं कालिजों के छात्र पढ़ाई पूरी करने के बाद पनवाड़ी से लेकर पटवारी तक बनते हैं। हमारे यहाँ के पढ़ाकू लड़के बनते हैं, नेता और मंत्री जबकि दूसरों का प्रोडक्ट है आज-कल डाकू और सन्तरी। यह सब इसलिए होता है क्योंकि आप सब मेहनत करते हैं साल साल भर। ईमानदारी से परीक्षा देते हैं और हम ईमानदारी से परीक्षा आयोजित करते हैं। परन्तु इस वर्ष हमारे इन प्रयत्नों को बड़ा धक्का लगा है। हमारी गौरवशाली परम्परा को कुछ स्वार्थी तत्वों ने तोड़ने का प्रयास किया है पर उसको हम टूटने नहीं देंगे। कुछ बेईमान शिक्षकों ने रुपये लेकर पेपर आउट कर दिये हैं उनके लिए हम निंदा का प्रस्ताव पास करते हैं और अब समय आ गया है कि हमारी गौरवशाली परम्परा

को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ऐसे लोगों का ट्रांसफर करवाना ही पड़ेगा। साथ ही कुछ छात्र जिनके नाम मैं जानता हूँ पर अभी आपको नहीं बताऊँगा उन्होंने डूँगडूँगपुर, डूमरडीह, डोंगर गाँव और डोंगरगढ़ तक बम्लेश्वरी देवी के दर्शन के साथ-साथ प्रेस के भी चक्कर काटे हैं यह हमारे लिए शर्म से डूब मरने की बात है। (कुछ फुसफुसाहटें--लेकिन हम डूबकर नहीं मरेंगे) हमारे माथे पर यह कलंक का टीका है। हम इसे मिटा कर रहेंगे। हम इसे मिटा कर रहेंगे।

तालियों की गड़गड़ाहट के साथ छात्रों की भीड़ छट जाती है। हँसते/मुस्कुराते कनखियों से इशारे करते हुये एकलव्य के छोटे भाई इतना सब सुनकर ध्यानस्थ होकर लक्ष्य प्राप्ति में जुट जाते हैं। छात्रों की टोलियों की टोलियाँ पूरे उमंग और उत्साह से भर कर उन महान शिक्षकों की खोज में लग जाती है। जो रुपये लेकर पेपर आउट करते हैं। गुरु दक्षिणा का यह आधुनिक दौर (एकलव्य की तरह पुराना और घिसा-पिटा नहीं) नई दृष्टि और नये वजन से लैस होकर सामने आता है। नई अभिनेत्री के पहले जन्म दिन की तरह/पहली हिट फिल्म की तरह। कुछ को टिकट मिल जाती है। किसी का चांस लग जाता है तो कोई सिल्वर जुबली मनाता है। जो पिछड़ जाते हैं वे रोते रह जाते हैं। जिस दिन परीक्षा का शुभारम्भ होता है इनकी दिनचर्या भी दर्शनीय होती है। आँखें धन्य-धन्य हो जाती हैं सब कुछ देखते हुये। ये भले मानुष तीन-चार पेनों की सफाई करते हैं रगड़-रगड़ कर फिर स्याही भरते हैं, अगरबत्ती का धुआँ दिखाते हैं और प्रणाम करते हैं और प्रणाम रूपी गाड़ी आशीर्वाद पाने की लालसा में दौड़ने लगती है राजधानी सुपर फास्ट की तरह। पेन के बाद पुस्तक-कापी के साथ-साथ सरस्वती जी के मूर्ति पर माथा टेका जाता है और ये बहादुर रण में कूद पड़ते हैं। परीक्षा केसरी का दंगल मारने के लिए। परीक्षा भवन के गेट से लेकर गैलरियों एवं मुख्य द्वार सभी जगह माथा टेकते हुए जाते हैं जनाब। कमरे में प्रवेश करते समय इनकी मुद्राएँ, इनकी घबराहट और

इनकी सकुचाहट नई नवेली दुल्हन को भी मात देती है। फिर भी किसी तरह अपने रोल नम्बर वाले डेस्क के पास पहुँच कर पूरी श्रद्धा के साथ माथा टेकते हैं। माथा टेकते-टेकते माथे पर भट्ठ पड़ जाता है, पर उन्हें कोई चिन्ता नहीं वे उत्तर पुस्तिका देखते ही अपनी श्रद्धा पुनः दर्शाते हैं, प्रश्न पत्र देखने के बाद इनका माथा स्वाभाविक गति से स्वतः टिक जाती है क्योंकि प्रश्न पत्र में माथा टेकने की प्रक्रिया पर कोई प्रश्न नहीं रहता। परन्तु जो समझदार होते हैं/होशियार/चुस्त और चालाक होते हैं वे आज-कल इतनी जगहों पर माथा नहीं टेकते। वे पता लगाते हैं। उद्धारक कौन है उनका। उनके ही चरणों में माथा टेकते हैं। गुरु दक्षिणा देते हैं भरपूर। दीक्षा मिल जाती है। परीक्षा रूपी कली मधुरस पाकर फूल बन जाती है, उत्तीर्ण हो जाती है। खिल जाती है और खिलखिलाती है। इस तरह कुछ के सर पर परीक्षा का भूत सवार रहता है तो कुछ परीक्षा के भूत को पैरों तले रौंदते हैं। अपने कुशाग्र बुद्धि के दम पर। अपनी तिकड़मों के दम पर परीक्षा केसरी का दंगल मारते हैं। परन्तु भूत तो भूत ही है वह अपना जलवा दिखाते हुये कहता है—

परचों की ये लूट है लूट सके तो लूट।
फिर पछताये होगा क्या, जब परचा जायेगा फूट ॥

□□

फाइलों के जंगल में

बड़े बाबू खुशदिल आदमी हैं। हरदम प्रसन्नचित्त रहते हैं। मुँह का पान उदर तक पहुँचाने के बाद मस्ती में गुनगुना रहे हैं—'मेरे अँगने में भीड़ लगी भारी मैं किसको किसको प्यार करूँ।' दूर केबिन में बैठे साहब भी सुनकर मुस्कुरा रहे हैं। वे जानते हैं जब बड़े बाबू अपनी प्रसन्नता का वेग सम्हाल नहीं पाते, तब आफिस में इन्हीं पंक्तियों को गुनगुनाते हुए प्रवेश करते हैं। वे समझ जाते हैं आज तेजी से दस्तखत करने हैं, फाइलों पर। हो सकता है, देर रात तक बैठना पड़े। आज मुहूर्त हुआ है। बड़े बाबू दूर की कौड़ी लाये हैं।

बड़े बाबू के कमरे में टेबल के चारों ओर ढेर नमूने अनोखी मुद्राओं में खड़े भी हैं और बैठे भी हैं। बड़े बाबू अपने मातहत से चर्चा कर रहे हैं। जानते हो वर्मा-फाइल का, वजन से बहुत आत्मीय और गहरा संबंध रहता है। जब फाइल के ऊपर पेपर वेट के रूप में ठोस और चपटा गोला रखा जाता है, तब फाइल उसके वजन से दब जाती है। विज्ञान की परीक्षा में फेल होकर छोटे बाबू बतलाते हैं। सही है सर। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। रबर की गेंद जितनी जोर से आप दीवार पर मारेंगे, उतनी ही वेग से वह आपके पास वापस आयेगी। बड़े बाबू का व्याख्यान पुनः गति पकड़ता है। वे कहते हैं जिस तरह समुद्र से रत्न निकालने के लिये गोताखोर बहुत नीचे तक गोता लगाते हुए जाते हैं तब ही उन्हें सीपियों से मोती मिलते हैं। उसी प्रकार रत्नगर्भा धरती के भीतर से कितनी मेहनत से हीरा और सोना निकाला जाता है। फिर उसे साफ किया जाता है। धोया जाता है, माँजा जाता है। तब कहीं सोने की सुनहली आभा और हीरे की चमक हम देख पाते हैं।

वे आगे बताते हैं—इसी तरह कार्यालय में ढेर सारी फाइलें पड़ी

रहती हैं। उनको ऊपर लाने के लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। पेपर वेट को हटाने के लिये उससे अधिक ताकत हाथों में चाहिये। सही फाइल को ढूंढ निकालने के लिए दृष्टि भी साफ होनी चाहिये। जिनकी दृष्टि साफ नहीं होती अथवा दृष्टि साफ करने के लिये हाई पावर का चश्मा तो वे लगाते हैं परन्तु उन्हें व्यावहारिक जगत की गतिविधियाँ साफ नजर नहीं आतीं, तो उनकी फाइल दबी रह जाती है। कुछ लोग अपनी काबिलियत के बल पर फाइल आगे बढ़ाना चाहते हैं परन्तु फाइल तो फाइल होती है। वह अड़ियल घोड़े की तरह अड़ी रहती है। तो ऐसे साधु पुरुष छोटे बाबू और बड़े साहब के सामने तो हाथ जोड़कर दंत-निपोरी करते हैं। परंतु पीठ पीछे उन्हें गालियाँ देते हैं। फाइल का भी अपना उसूल होता है। वह तो तभी बढ़ती है आगे जब पेपर वेट उसके ऊपर से [illegible] लिया जाए। जो व्यावहारिक गतिविधियों से परिचित होते हैं, वे अपनी दृष्टि साफ करते हुए चपरासी के साथ-साथ छोटे बाबू को भी खुश करते हैं। बड़े साहब का तो नाराज करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार व्यवहार कुशल व्यक्ति अपनी व्यावहारिकता से अपनी फाइल पर लाल चिट लगवाने में सफल हो जाता है। जिस पर बड़े-बड़े लाल-लाल अक्षरों मे लिखा रहता है—'तत्काल' या अंग्रेजी में 'अर्जेंट' और फिर तूफानी गति से फाइल सभी टेबल पर दौड़ने लगती है। [illegible] फतह हो जाता है।

बड़े बाबू के इस लम्बे-चौड़े व्याख्यान से बोर होते हुये लोगों ने पूरा का पूरा व्याख्यान पचा लिया। मुस्कुराते हुये मौन रहकर भी बता दिया कि वे समझ रहे हैं। सभी जल्दी-जल्दी फाइल से पेपर [illegible] प्रक्रिया में जुट गये। सभी अच्छी तरह समझ गये थे कि 'फाइल' [illegible] भी कार्यालय की धड़कन है। जिस तरह बादल [illegible] नायिका के सुन्दर चेहरे के चारों ओर चक्कर काटती [illegible] कार्यालय के छोटे से छोटे बाबू से लेकर बड़े अधिकारी भी [illegible] पर हस्ताक्षर के लिये तड़फती रहती है। [illegible]

स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे के कभी न समाप्त होने वाले चक्कर में घुमाते रहते है। स्वयं भी घूमते रहते हैं। फिर भी वे प्रसन्न रहते हैं क्योंकि उन्हें भी यह फाइल जीवनदायिनी शक्ति प्रदान करती है। वे सब के सब फाइल को साक्षात अन्नपूर्णा का अवतार मानते हैं।

यदि आपके भीतर यह सब भाग्यभाव, दूरदृष्टि और कठोर परिश्रम की अद्भुत क्षमता नहीं है, तो आप चढ़ते हुए सूरज के साथ-साथ प्रतिदिन कार्यालय में आइये। डूबते हुये सूरज के साथ लौट जाइए। आपकी फाइल इधर से उधर और उधर से इधर भटकती रहेगी। एक दिन ऐसा होगा कि आप रिटायर हो जायेंगे। रिटायर होने के बाद भी यदि आपकी समझ विकसित नहीं होती (बाबू पुराण के अनुसार) तो फाइलों के जंगल में आपकी फाइल भटकती रहेगी। आपकी अर्जी कभी चार फाइल में अटकेगी तो कभी लेटी फाइल में लेटी रहेगी या खड़ी फाइल में आदेश के इंतजार में हाथ बाँधे खड़ी रहेगी। कार्यालय की महत्ता और वहाँ के कर्मचारियों का रुतबा फाइल की भागा दौड़ के कारण ही है। कहा जाता है—"भारतीय कृषक ऋण में जन्म लेता है, ऋण में पलता हुआ बूढ़ा हो जाता है, ऋण में ही मर जाता और आने वाली पीढ़ी के लिये ऋण ही छोड़ जाता है। कहीं ऐसा तो भी अपनी फाइल निपटाये बिना हमेशा-हमेशा के लिये कूच अपनी पीढ़ी के लिये फाइल के लिये चक्कर लगाने जायेंगे। ऐसे ही स्थितियों में देश को आगे बढ़ाने मूँदकर जोर-जोर से इस लगायेंगे—

मेहनत और रोटी

जल्दी काम ५०

प्रजातंत्र के रखवाले

कर्तव्यनिष्ठ दरबान का काम हवेली या फ्लेट की रक्षा करना होता है। उसी प्रकार नेता नामक प्राणी प्रजातंत्र का सबसे बड़ा दरबान माना जाता है। बुद्धि के ठेकेदारों के मुख से अक्सर सुना जाता है कि मजबूत विपक्ष प्रजातंत्र की सफलता के लिए बहुत जरूरी है। हमें सत्ता के तलवे चाटना छोड़कर विपक्ष को मजबूत करना होगा। और फिर स्वयं ही अपनी आदत से बाज नहीं आते। शुरू कर देते हैं तलवे चाटना।

वाद-विवाद में पक्ष और विपक्ष दोनों ही अपनी पैनी, सटीक व्यक्तिगत से जनता को लुभाते हैं। अर्थ कुछ नहीं केवल चटपटी बातें। सपना रंगीन दुनिया का। आश्वासनों का ढेर परोसते हैं। प्रजातंत्र की रक्षा का भार शोहदों ने भी उठा लिया है। वे भी अच्छे दरबान माने जा रहे हैं। ये उनमें से हैं जो स्वयं हवेली में सेंध लगवा देते हैं। रक्षक ही भक्षक बनकर सेवा करने का ढोंग करते हैं। इधर कुछ सट्टा पट्टी लिखने वाले भी छोटे-छोटे दरबान बन गये हैं। झूठी जमानत लेने वालों की गिनती मँझोले दरबानों में होने लगी है।

एक बहुचर्चित मेले में बहुत सारे दरबान एकत्रित हुये। सबका अपना फलसफा है। किसी दरबान ने हरे रंग का झंडा अपनाकर युद्ध की घोषणा की है, तो कोई अपने भगवे झंडे मे मस्त है। तो कोई दरबान सर से पैर तक सफेद है। हाथ में झंडा भी सफेद लिये हैं। केवल चेहरा काली हंडी की तरह दमक रहा है। बड़े-बड़े दरबानों की चर्चा यू रंग ला रही थी।

सफेद झंडा उवाच :

भाई मेरी बात मानो। पुलिस के डंडे खाना-चुल्लू भर पानी में डूब मरने लायक बात है। देखो कैसी सधी हुई पिटाई की है। मेरे बदन का

एक-एक पोर दर्द कर रहा है। सर से पैर तक सफेद हूँ। परन्तु एक बूंद भी खून का दाग नहीं। जबकि उन्होंने मार-मार कर मेरा भुरता बना दिया। कम्बल में लपेटकर मारते हैं साले। अब तो उसको नौकरी से निकलवाना ही पड़ेगा। आज से हमारा नारा होगा—

"पुलिस की तानाशाही नहीं चलेगी।
नहीं चलेगी............नहीं चलेगी।"

हरा झंडा उवाच :

तुमको अपनी पड़ी है। इधर मेरा सब कुछ लुट गया। पिछले महीने उस साले मास्टर के पास मैं दस बार गया कि इस बार मेरे चिरंजीव को अवश्य पास कर दे। दो बार फेल हो चुका है। अब की फेल हुआ तो मेरे लाडले की जिंदगी बर्बाद हो जायेगी। परन्तु उस दो टके के मास्टर ने तीसरी बार भी मेरे प्रतिभाशाली और होनहार जवान को केवल इसलिये फेल कर दिया क्योंकि एक बार उसने मास्टर की कॉलर पकड़ ली थी। और मैंने उस मास्टर को पास करने के लिये पांच सौ रुपये नहीं दिये। क्या समझता है? साला अपने आपको। छठी का दूध याद करा दूंगा उसको। आज से मेरा नारा होगा—

"शिक्षा विभाग में भ्रष्टाचार।
बंद करो............बंद करो।"

लाल झंडा उवाच :

तुम लोग समझते नहीं हो। ये सब तो चलता ही रहता है। पहले अपनी आगे की सोचो। अपना "भारत बंद" तो सफल रहा परन्तु नगर बंद के लिये कोई तैयार नहीं है। यदि बंद के दिन भी दुकानें खुल गईं तो फजीता हो जायेगा। इसलिये नारा लगाओ और बंद वापस लेने की तरकीब सोचो—

"जिला प्रशासन हाय हाय।
जिला प्रशासन हाय हाय।।"

भगवा झंडा उवाच :

मुझे आप सबकी बातें सोलह आने सही लगती हैं। तीन नारों के साथ चौथा नारा मैं बताता हूँ। इसे भी शामिल कीजिये—

"जो हमसे टकराएगा ॥
चूर-चूर हो जायेगा ॥"

बड़े-बड़े दरबान मिलकर नारे लगा रहे थे। बंद की वापसी के लिये जुलूस आगे बढ़ा रहे थे। पुलिस प्रशासन के लिये हाय-हाय कर रहे थे। शिक्षक को सस्पेंड कराने के नारे थे। बड़ी-बड़ी मांगें थीं। विधानसभा पर घरना की बातें थीं। नगर बंद का आह्वान था। सब टॉय-टॉय फिस्स हो गया। एक छोटे से स्थानांतरण की घोषणा होते ही दरबानों का रंग-बिरंगा विद्रोही फुग्गा सुई की नोंक लगाते ही सिकुड़ गया। सबने एक स्वर में इस ट्रांसफर को तानाशाही ताकतों पर प्रजातंत्र की विजय घोषित करते हुये अपना आंदोलन वापस ले लिया। अब वे जनता को भी बाध्य कर रहे हैं कि जनता इसे प्रजातंत्र की विजय का प्रतीक माने परन्तु जनता समझदार है। ढोल की पोल वह जानती है। परन्तु चूहे समझ रहे हैं कि उन्होंने हाथी को पछाड़ दिया।

सभी दरबानों ने प्रजातंत्र की इस विजय पर उत्सव मनाया। जाम पर जाम टकराए। डिस्को हुआ। भांगड़ा हुआ। और अंत में कैबरे भी। अपनी-अपनी पिनक और रौ में झंडे बोलने लगे। अंत में वरिष्ठ एवं वयोवृद्ध झंडे ने समापन कुछ इस तरह किया। हमारी इस विजय से हम आल्हादित हैं। एक सच बात कहता हूँ। अपने ही बीच रखना। दीवारों के भी कान होते हैं। हमारी लड़ाई जनता की भलाई के लिये नहीं वरना अपनी अहं की तुष्टि के लिये है। हमारा प्रमुख कार्य जनता को मूर्ख बनाना है। प्रश्न हमारे अस्तित्व की रक्षा का भी है। हम तो गधे को भी जरूरत पर काका बनाते हैं। हवलदार को सलाम करना हमारी संस्कृति है। हम फिर से मिलजुलकर किसी ऐसे अवसर की तलाश करें ताकि जनता में हमारी छबि धूमिल न हो।

अधिकांश दरबानों ने दो महापुरुषों के आदर्श को आत्मसात किया। एक ओर विवेकानंद के अनुसार स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग रहता है। ऐसा मानते हुये दिन में दंड पेलते हैं। बदन बनाते हैं। लाठी घुमाते हैं। तो दूसरी ओर गांधीजी के अछूतोद्धार को अपने ढंग से लागू करते हुये अछूत कन्याओं का उद्धार करते हैं। मौका पड़ने पर बहू उद्धार करते हैं। समापन के रूप में अपने-अपने ढंग से देश का उद्धार करते हुये वे निकल पड़े पुनः किसी एक छोटी-सी बात की तलाश में इनको देखकर ही मुकीम भारती ने लिखा है—

"नाव में बैठा है, तूफान मेरे देश में।
द्वार पे सोया है, दरबान मेरे देश में।"

□□

कुर्सी प्रेमी : कलयुगी कृष्ण

प्रेमपत्र की भाषा कभी-कभी ऐसी होती है कि पढ़ने वाले का ब्लड प्रेशर हाई हो जाता है। आप घबराइये मत। आपके लिए ऐसा कोई खतरा नहीं है। साहित्यकार इसी प्रक्रिया को हृदय का स्पंदन कहते हैं। और चलताऊ भाषा में लोग कहते हैं इसे कलेजे का धकधकाना। जो भी हो प्रेमपत्र, प्रेमपत्र ही होता है। रस की वर्षा करते हैं—प्रेमपत्र। प्रेमपत्र आपने भी पढ़ा होगा। सुना और गुना भी होगा। द्वापर के कृष्ण का राधा के प्रति लगाव प्रख्यात है। प्रेम की इस दौड़ में आज-कल के नेता लगातार अव्वल आ रहे हैं। कलयुगी कृष्ण का कुर्सी के प्रति प्रेम सात समंदर पार कर अपनी कीर्ति का पताका फहरा रहा है। इसे पाने के लिए वह क्या-क्या नहीं करता। इस बार उसने कलम का प्रयोग तलवार की तरह किया है। अपनी प्रिय कुर्सी को पाने के लिये उसने लगातार पत्र लिखे हैं। उसकी यह क्षमता दूज की चाँद की तरह एक-एक कली बढ़ती ही गई है। उन्होंने जो पत्र लिखे हैं उसके कुछ ताजे नमूने उपचुनाव के पहले अवलोकनार्थ और समीक्षार्थ प्रस्तुत हैं। जम-कर पटकनी देने वाली जरूरत से ज्यादा समझदार मतदाताओं के दरबार में। गौर फरमाइये—गोवर्धन उठाने में सहयोगी मेरे भूतपूर्व ग्वालबाल सब भाइयों और सज्जनों।

संकट के समय काम आने वाले मेरे साथियों। मुझे घनघोर दुख है कि आपने मुझे दिल्ली जाने के योग्य नहीं समझा और सरे बाजार मेरी इज्जत उतार दी। मेरे कहने का मतलब यह है कि आपने मुझे लोकसभा चुनाव में वोट नहीं दिया और मेरी जमानत जब्त हो गयी। तुम्हारी इस क्रोधाग्नि का कारण मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। मेरे सामने दुःख का सागर लहरा रहा है जिसमें एक बड़ी कुर्सी पर बैठाते-बैठाते आपने मुझे

डुबो ही दिया था। वह तो मैं तैरना जानता था इसलिए हिम्मत बांध कर, पूर्वजों की शक्ति का स्मरण कर निकल आया हूँ। इसके बाद मेरे सामने थी दुःख की ऊँची-नीची तूफानी लहरों पर एक छोटी-सी विधान-सभाई कुर्सी। मैंने निवेदन किया था कि मुझे उस कुर्सी पर बैठाइये, परन्तु आपके ऊपर मेरे सच्छेदार भाषणों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा और आपने मुझे विधान सभा में भी क्लीन बोल्ड करवा दिया। घर से निकलना मुश्किल हो गया, परन्तु मैं तो हमेशा से आपकी सेवा करता आया हूँ। हार-जीत को मैं कर्मयोगी की तरह समभाव से ग्रहण करता हूँ। परन्तु आज की स्थितियों में सेवा करने की इच्छा रखने वालों को कुर्सी पर बैठना जरूरी हो गया है। उसके बिना सेवा कार्य हो ही नहीं सकता। भारतीय संस्कृति में तो दुश्मन के यहाँ भी जब 'गमी' होती है तो हम उसे सांत्वना देने जाते हैं। मेरे यहाँ गमी का माहौल किसी देहावसान के कारण नहीं वरन् लोकसभा चुनाव एवं विधान सभा चुनाव में मेरी जमानत जब्त होने के कारण है। आपका यह कर्तव्य है कि मेरे दुःख में शरीक होकर मुझे सांत्वना दें। वैसे भी द्वापर में जब संकट आया था गोवर्धन आप लोगों ने लाठियों से उठाया था। मैंने तो केवल अँगुली। जब जो भी संकट सामने आता है, अपनी आदत के अनुसार मैं अँगुली लगाता हूँ, परन्तु आप लाठी नहीं लगाते, अतः संकट से मुक्ति नहीं मिल पाती। इसके लिए आप मुझे दोषी नहीं ठहरा सकते। यह जो मँहगाई का पहाड़ है, उसे आपकी लाठी ही झेल सकती है मेरी अँगुली नहीं। आओ अब एक साथ मिलकर इसे उखाड़ फेंकें, परन्तु इससे पहले आप अपना वोट देकर होने वाले उपचुनाव में मुझे कुर्सी पर बैठा दीजिए।

दही लूट के लिए उकसाने वाली मेरी भूतपूर्व गोपिकाओं और माताओं और बहनों,

आप तो युगों से मुझे जानती हैं, पहचानती हैं। कैसे मैंने द्रोपदी

की सहायता चीरहरण के समय की थी। जहाँ तक मेरे स्वभाव का प्रश्न है, मैं विनोदी और नटखट तो बचपन से ही हूँ। द्वापर युग में कितनी मटकियाँ फोड़ी थीं, कितना दही लूटा था। आप जब जमुना तट पर नहा रही थी, आप सबके वस्त्र लेकर भाग गया था। इतना नाराज तो आप तब भी नहीं हुई थीं। इस बार अपने पिछले कार्यकाल में मेरी चुहलबाजी थोड़ी बढ़ गयी थी और कुछ रमणियों से इतिहास की पुनरावृत्ति मैंने की। वह भी चोरी-चोरी। पर पता नहीं पत्रकारों ने कैसे सूँघ लिया और कुछ भी गलत-सलत छाप दिया। आप लोगों ने उसे सच मान लिया और लोकसभा चुनाव में घर आँगन से निकाला तथा विधान सभा चुनाव में मंदिर से ही निकाल दिया। मुझे अपार दुःख है। बुढ़ापे की ओर बढ़ती उम्र में तुम लोग मेरा साथ छोड़ रही हो। मैंने तुम्हें कितना समझाया था। पुरानी बालसखी समझ सारी भेद की बातें बतायी थी और कहा था कि इन नये-नये छोकरों का भरोसा मत करो। अधिक नहीं तो केवल पाँच साल और बिठाओ अपने मन मंदिर में परन्तु तुमने एक न सुनी और दोनों बार जमानत जब्त करवाकर सड़क पर खड़ा कर दिया।

मेरा ये छोटा-सा प्रेमपत्र पढ़कर आप लोग नाराज मत होना नहीं तो मैं जीते जी मर जाऊँगा। आप सब जानते हैं इस समय होने वाले उपचुनाव के लिए टिकिट हथियाने की चक्कर में मैं बहुत व्यस्त हूँ और जैसे ही चुनाव होंगे, मैं दौरा कार्यक्रमों द्वारा, डोर टू डोर सम्पर्क करूँगा। अभी सावधानी और सुरक्षा की दृष्टि से मैंने सभी के लिए एक साथ पत्र लिख दिया है जिसके बहुत सारे उद्देश्य हैं। लोग मेरी साहित्यिक प्रतिभा से परिचित होंगे। बार-बार होने वाली लघुशंका की तरह मेरी छपास की भावना को भी थोड़ा सुकून मिले और आगामी उपचुनाव में आप मुझे वोट तो देंगे ही। मैंने हिम्मत हारना नहीं सीखा है। कहा भी गया है मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

आपका,
वोट के विरह से व्यथित
कलयुगी कृष्ण

पुनश्च: लोकसभा में मैं हारा, कारण मेरा कर्म था, विधान सभा में फिर हमारा कारण आपका मर्म है ।
अब उपचुनाव में जीतना मेरा अधिकार और वोट देना आपका अनिवार्य धर्म है ।

□□

'माँग' तेरे रूप अनेक

'माँग भरना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' कहकर भारतीय नारी ने 'माँग' के नखरे बढ़ा दिए हैं। सम्मान पाकर माँग फूली नहीं समा रही। इठलाती, बलखाती घूम रही है। चारों ओर। सचमुच कभी छोटी तो कभी बड़ी होकर, कभी टेढ़ी होकर तो कभी सीधी होकर उभरती हुई लाली नारी जाति की गरिमा, और विशिष्टता की पहचान होती है परन्तु आजकल यह लाल माँग, साड़ी ब्लाऊज़ के साथ मैच करती हुई पीली, नीली और हरी भी देखने में आती है। भारतीय नारी की माँग के अलावा भी माँग के कई रूप हैं। जैसे भिखमंगों की माँग अलग होती है दयनीय, उपेक्षित और करुणा से भरी हुई। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में लोगों की जेब खाली करती हुई पूर्ति के इंतज़ार में वस्तुओं की लोचदार और बेलोचदार माँग। यह कभी अधिक लोचदार है तो कभी कम लोचदार होती है। और एक माँग वह होती है जो ऋतुचक्र की तरह आती है। पृथ्वी की तरह अपनी कील पर घूमती है। हर पाँच वर्ष बाद आपके दरवाजे पर आकर खड़ी हो जाती है। इसे कहते हैं 'नेताओं' की माँग। वोटों की माँग। वोटों की यह माँग जब फेल होती है तो वह भारतीय नारी की धुली हुई माँग की तरह (वैधव्य की प्रतीक) उपेक्षा और अपशगुन की शिकार होती है। अब जनता जिसे चाहे चढ़ावे जिसे चाहे उतारे। उसकी इच्छा ही सर्वोपरि है।

आजकल मतदान के कुरुक्षेत्र में वोटों की माँग पर चर्चा-सुर्खियों में है। सामान्यतः धूमधाम होती है। शादी ब्याह में, पुत्र रत्न की प्राप्ति में। होली, दीवाली, ईद में, रोशनी होती है; बैंड बाजे बजते हैं। मुँह मीठा करते हैं एक दूसरे का गले मिलकर बधाइयाँ बँटती हैं। इनके साथ-साथ १५ अगस्त और २६ जनवरी को हलचल भी देखते बनती

है। परन्तु इनके साथ प्रत्येक पाँच वर्ष में (कभी-कभी जल्दी भी) एक दिन और भी धूमधाम होती है। मिठाई बँटती है और लोग गले मिलते हैं वह होता है भारतीय प्रजातंत्र में वयस्क मताधिकार के स्वतंत्र उपयोग का दिन। गुप्तदान की महत्ता तो आपने बहुत सुनी होगी, पढ़ी होगी, गुनी होगी परन्तु यह होता है गुप्तदान से भी वजनदार मतदान का दिन। इस दिन मतदाता, मतपेटी में मत डालकर नन्हे-नन्हे पौधों के साथ-साथ हजारों दिग्गजों के भाग्य का फैसला करते हैं। कभी-कभी प्रतिभा और पद के मणिकांचन संयोग को भी ये धूल चटा देते हैं और कभी-कभी उपेक्षित, तिरस्कृत एवं अनजाने रंक को भी ये बीसवीं सदी का राजा बना देते हैं। जो इनकी नजरों से उतरा वह धार ही धार बह जाता है। पता ही नहीं लग पाता। जो नजरों में चढ़ा वह चुनाव की वैतरणी पार उतर जाता है। बिना हाथ-पैर डुलाये।

वोटों की माँग जब सर उठाती है तो चारों ओर भिखमंगे दिखलाई पड़ते हैं। सब अपने-अपने तरीके से माँगते हैं। सभ्यता और संस्कृति की चासनी में डुबकर माँगते हैं। हाथ जोड़कर माँगते हैं, घूम-घूम कर माँगते हैं। मतदाता को ये साधक त्रिपुरारी, भोले भंडारी की तरह पूजते हैं। क्योंकि यदि त्रिपुरारी त्रिनेत्र खोलें तो जमानत जब्ती का फैसला देकर अच्छों-अच्छों को भौंचक्का कर देते हैं। गर भोले भंडारी प्रसन्न हुए तो बीसवीं सदी का बेताज बादशाह घोषित कर देते हैं। चुनावी माया की पूरी बागडोर इस समय मतदाता के हाथों में ही होती है। वह जैसा चाहे नचाता है इन सब को। सब समझते हैं और नाचते हैं क्योंकि इनको प्रसाद पाना जरूरी होता है। ये प्रसाद बाँटते जरूर हैं परन्तु पाँच सालों के लिए। जो भी प्रसाद पाने वालों के लिए एक जरूरी सी शर्त के साथ 'देखो भइया मत करना नखरा कान पकड़कर पहुँचे ही उतार दिए जाओगे।'

इस धावा दौड़ में सभी अव्वल आना चाहते हैं। चुनाव के बाजार में जबरदस्त माँग होती जा रही है। पार्टियों की उखाड़-पछाड़ प्रतिदिन चाल

की तरह रंभा रही है। सारा का सारा राष्ट्र आंदोलित है। सभी की स्थिति भ्रम पैदा करने वाली है। वीडियो कैसेट्स जमकर चल रहे हैं। टेप रिकार्ड चर्तुदिक बज रहे हैं। बोर्ड और बैनर के साथ-साथ पोस्टर कह रहे हैं इंदिरा जी की अंतिम इच्छा—बूंद-बूंद से देश की रक्षा। इसी प्रकार न्यूज पेपर में बड़े-बड़े विज्ञापन हैं 'बिना रिश्वत के सीमेंट तो सीमेंट राशनकार्ड तक नहीं मिलता/वाह री काम करने वाली सरकार/भाजपा-समर्पित, कुशल ईमानदार। इनके साथ-साथ घोड़े, हाथी, तराजू-बैलगाड़ी और हलधर किसान के साथ अनेक लोग वोट माँग रहे हैं दिग्गजों के भाषणों में भी हल्की, चटपटी और ओछी बातें आप सुन सकते हैं। संघर्ष गुरु-चेले का, माँ-बेटे का, सास-बहू का, भाई-भाई का, साले-बहनोई का एक केवल वोट की माँग को लेकर है। कुछ लोग नये नारें उछाल रहे हैं। नये खून से मत टकराना—अब बुड्ढों का गया जमाना। इतना सब है फिर भी मतदाता में जोश खरोश नहीं है। क्योंकि वे समझते हैं, सत्ता की कुर्सी पर कोई भी आए जनता की बुनियादी गरीबी बनी रहेगी सबकी अपनी-अपनी डफली है अपना राग है। कोई सुर में नहीं गा रहा। जनता सोचती है। कोई जाति का ढोल पीट रहा है तो कोई धार्मिक भावना को उभाड़ रहा है। आचार संहिता का पालन सभी कर भी रहे हैं और सभी नहीं भी कर रहे हैं। देखना अब किनकी माँग सार्थक होती है। मतदाता के कंधों पर भार है दानों में महादान इस मतदान का—

लोहा गरम हो चुका है, चोट करना बाकी है।
दुल्हन खड़ी है सामने, माँग भरना बाकी है॥

□□

धन्यवाद देने लगे नेता जी

देवियों और सज्जनों,
देवताओं और सज्जनियों,

कह सकता हूँ, आपने मुझ पर 'सील' लगाकर मुझे कृतार्थ कर दिया। मतपत्रों पर लगी हुई हजारों-हजारों सीलों से मुँपचुप मेरे शील (इज्जत) की रक्षा की है। आपने मुझे विजयश्री दिलाकर मेरे सात पुरखों को तार दिया है। मैं किस मुँह से आपका आभार व्यक्त करूँ। मेरा मुँह इस लायक नहीं है कि आपका अभिनंदन कर सके। केवल यही कह सकता हूँ मुझ पर विश्वास व्यक्त करके आपने मेरे भविष्य को 'सुनहरे हरफों' से लिखा है। जैसा कि आप जानते हैं व्यक्ति के उत्थान से ही समाज का विकास होता है। जैसे-जैसे हम बदलेंगे, वैसे-वैसे युग बदलेगा। इसी गणित के अनुसार कह सकता हूँ अब मेरा भविष्य अब स्वर्णिम प्रभात से चमकते दिनमान की ओर बढ़ रहा है तो मेरे साथ-साथ आपका और आपके साथ-साथ देश का भविष्य भी बीसवीं सदी के स्वर्णयुग की ओर बढ़ेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हम सब एकजुट होकर कठोर परिश्रम करें। खाद्य समस्या के संकट को आधा पेट खाकर दूर करें। आवास और वस्त्र समस्या का निदान पूर्वजों की तरह तेजस्वी बनकर करें। संतों की तरह लंगोटी पहनें और राणा प्रताप की तरह राष्ट्रभक्ति का परिचय दें। 'अम्बर मेरा बिस्तर है और धरती बिछौना' गीत गाते हुए आगे बढ़ें। मैं कह सकता हूँ चुटकी बजाते-बजाते सारी समस्याएँ हल हो जायेंगी। मुझे विश्वास है भारत के गौरवशाली अतीत को पुनः महिमामंडित करने के लिए सहयोग करेंगे।

मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि इस शुभ अवसर पर आपने मुझे क्रांति जैसे अछूते और दुर्लभ विषय पर बोलने के लिए आमंत्रित किया। सच तो

यह है भाइयों और बहनों कि नूतन के प्रति मनुष्य का आकर्षण शाश्वत है मेरा आशय फिल्म की नूतन से नहीं है। नयेपन से है। अज्ञात और अपरिचित की खोज ही क्रांति है। 'क्रांति' शब्द का प्रयोग करते ही हमें एक ऐसे परिवर्तन का आभास होता है जो समाज में पूरी तरह उथल-पुथल मचा देता है। सब पुराने रीति-रिवाजों, मूल्यों, परम्पराओं और विश्वासों को अस्वीकार कर उसकी जगह नई व्यवस्था स्थापित करता है। *उसी प्रकार जैसे आपने अपना मत देकर मुझे स्थापित किया है।* इसे भी इस क्षेत्र की छोटी-सी क्रांति कह सकता हूँ। जब हम क्रांति के उद्देश्यों की चर्चा करते हैं तो क्रांति में जनता की सुख-शांति के लिए क्रांतिकारी की छटपटाहट वैसे ही दिखनी चाहिए जैसे दर्पण में चेहरा। इतिहास बताता है कि इब्राहिम लिंकन, लेनिन, कार्लमार्क्स, गांधी और जयप्रकाश नारायण सब किसी-न-किसी प्रकार मानव मूल्य की रक्षा के लिए बेचैन थे। वैसे ही जैसे आप मुझे मानव जाति के नये मूल्यों के लिए छटपटाते हुए देख रहे हैं धीरे-धीरे मेरी निष्ठा रंग लायेगी और मैं क्रांति करूँगा मैं पुनः 'धन्यवाद कह सकता हूँ क्योंकि आपने मेरी देश की सेवा की छटपटाहट को, हार्दिक इच्छा को पहचाना और मुझे चुनाव में चुनकर यहाँ पहुँचा दिया जहाँ जाने को देवता भी तरसते हैं। जो स्वर्ग से बढ़कर है।

कह सकता हूँ, क्रांतियाँ बहुत हुईं। सर्वप्रथम फ्रांस की राज्य क्रांति जिसने मानव जाति को सबसे पहले स्वतंत्रता, समानता और बंधुता का बोध कराया। उसके बाद रूस की बोल्शेविक क्रांति शायद यह १९१७ में हुई। रूसी जारशाही पर सर्वहारा की विजय संसार में एक अप्रत्याशित और स्तंभित कर देने वाली घटना मानी गई। जिसने प्रथम बार शोषितों को सत्ता के सिंहासन पर आसीन हो सकने का गौरवपूर्ण अवसर सुलभ कराया था। इसके बाद क्रांतियाँ तो बहुत हुईं परन्तु आप अधिक बोर न हों इसलिये *सीधे भारतवर्ष में हुई 'समग्रक्रांति' पर आ जाता जिसने* भाई-भाई के भाईचारे और द्वंद्व युद्ध दोनों की मिसाल कायम की। जिसने

प्रधानमंत्री पद पर क्रांति की मुहर लगाते केवल ३ वर्षों में दो-दो नये प्रधानमंत्री दिए। इस समग्र क्रांति के प्रणेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण थे। लेकिन कुर्सी मिलने के बाद नेताओं ने उनकी पूछ कम कर दी थी तब जनता ने अपने सच्चे हमदर्दों को, सच्चे सपूतों को, सच्चे सेवकों को सेवाभाव के लिए चुना था परंतु वे सेवा नहीं कर सके। अभागे ये बेचारे। कह सकता हूँ वैसे ही जैसे आप लोगों ने इस बार मुझे चुना है। पुनः जनता जनार्दन का अभिनंदन करता हूँ। मैं ईमानदारी से पूरे पाँच वर्ष सेवा करूँगा। क्रांतियों के क्रम में *समग्रक्रांति का मोहभंग* होता है और इंदिरा जी की वापसी को भी मैं विश्व के इतिहास में एक अभिनव क्रांति मानता हूँ। इसी क्रांति का मैं भी एक सिपाही हूँ।

कह सकता हूँ क्रांतियाँ तो आज भी ढेर सारी हो रही हैं पर हम देख नहीं पा रहे हैं। आवश्यकता है खुली आँखों की, खुले दिमाग की या यों कहें सम्पन्न दृष्टि का सान्निध्य ही सर्वोपरि है। आप देखिए धृतराष्ट्र की तरह और मैं वेदव्यास की दिव्य दृष्टि का प्रयोग करते हुए आपको दिखाता हूँ 'बीसवीं सदी के भारत में क्रांतियों के बीच महा॰भारत'। कमेन्ट्री साथ-साथ चलेगी। सबसे पहले हम देखें कि परिवार नियोजन पर करोड़ों रुपये व्यय करने के बाद भी बच्चे खटाखट पैदा हो रहे हैं। इसे जनसंख्या क्रांति कहेंगे। उत्पादन के क्षेत्र में पुराने रिकार्ड तोड़कर 'उत्पादन क्रांति' के झंडे गाड़े जा रहे हैं। ओलम्पिक में आपने देखा कि थोड़ा-सा पिछड़ने के बाद भी पी॰ टी॰ उषा ने भारतीय *महिला* जगत के खेलकूद में क्रांति कर दी। महिलाएँ सभी क्षेत्रों में क्रांति कर रही हैं। राकेश शर्मा ने भारत की ओर से पहली बार ऊँची उड़ान भरते हुए *अंतरिक्ष* यात्रा करके अंतरिक्ष में भी क्रांति कर दी। फिल्मी अभिनेताओं ने नेता बनने की ठानी, चुनावी बिगुल फूँका और क्रांति कर दी उन्होंने राजनीति में जनता दिखा दिया।

नये वर्ष की शुभकामनाओं के साथ आपको नया नारा देता हूँ। *'प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति करना हमारा धर्म ही नहीं कर्तव्य है।'* और दूसरा

नारा होगा। हम मरते दम तक उसके लिए संघर्ष करेंगे, मुझे विश्वास है इसी तरह मैं आपको भाषण रूपी गरमा-गरम चाय पिलाता रहूँगा और आप सब मुझे बारम्बार सेवा का अवसर देते रहेंगे। मुझे भाषण के साथ-साथ शेरो शायरी का भी फितूर है। कुछ-कुछ भूल गया हूँ। फिर प्रयास करता हूँ। हाँ तो लीजिए प्रस्तुत हैं दुष्यंत का एक तगड़ा शेर :—

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा उद्देश्य नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिये

□□

प्रधानमंत्री पद पर क्रांति की मुहर लगाते केवल ३ वर्षों में दो-दो नये प्रधानमंत्री दिए। इस समग्र क्रांति के प्रणेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण थे। लेकिन कुर्सी मिलने के बाद नेताओं ने उनकी पूछ कम कर दी थी तब जनता ने अपने सच्चे हमदर्दों को, सच्चे सपूतों को, सच्चे सेवकों को सेवाभाव के लिए चुना था परंतु वे सेवा नहीं कर सके। अभागे थे बेचारे। कह सकता हूँ वैसे ही जैसे आप लोगों ने इस बार मुझे चुना है। पुनः जनता जनार्दन का अभिनंदन करता हूँ। मैं ईमानदारी से पूरे पाँच वर्ष सेवा करूंगा। क्रांतियों के क्रम में समग्रक्रांति का मोहभंग होता है और इंदिरा जी की वापसी को भी मैं विश्व के इतिहास में एक अभिनव क्रांति मानता हूँ। इसी क्रांति का मैं भी एक सिपाही हूँ।

कह सकता हूँ क्रांतियाँ तो आज भी ढेर सारी हो रही हैं पर हम देख नहीं पा रहे हैं। आवश्यकता है खुली आँखों की, खुले दिमाग की या यों कहें सम्पन्न दृष्टि का सानिध्य ही सर्वोपरि है। आप देखिए धृतराष्ट्र की तरह और मैं वेदव्यास की दिव्य दृष्टि का प्रयोग करते हुए आपको दिखाता हूँ 'बीसवीं सदी के भारत में क्रांतियों के बीच महाभारत'। कमेन्ट्री साथ-साथ चलेगी। सबसे पहले हम देखें कि परिवार नियोजन पर करोड़ों रुपये व्यय करने के बाद भी बच्चे खटाखट पैदा हो रहे हैं। इसे जनसंख्या क्रांति कहेंगे। उत्पादन के क्षेत्र में पुराने रिकार्ड तोड़कर 'उत्पादन क्रांति' के झंडे गाड़े जा रहे हैं। ओलम्पिक में आपने देखा कि थोड़ा-सा पिछड़ने के बाद भी पी० टी० उषा ने भारतीय महिला जगत के खेलकूद मे क्रांति कर दी। महिलाएँ सभी क्षेत्रों में क्रांति कर रही हैं। राकेश शर्मा ने भारत की ओर से पहली बार ऊँची उड़ान भरते हुए अंतरिक्ष यात्रा करके अंतरिक्ष में भी क्रांति कर दी। फिल्मी अभिनेताओं ने नेता बनने की ठानी, चुनावी बिगुल फूंका और क्रांति कर दी उन्होंने राजनीति में जलवा दिखा दिया।

नये वर्ष की शुभकामनाओं के साथ आपको नया नारा देता हूँ। 'प्रत्येक क्षेत्र मे क्रांति करना हमारा धर्म ही नहीं कर्तव्य है।' और दूसरा

नारा होगा। हम मरते दम तक उसके लिए संघर्ष करेंगे, मुझे विश्वास है इसी तरह मैं आपको भाषण रूपी गरमा-गरम चाय पिलाता रहूँगा और आप सब मुझे बारम्बार सेवा का अवसर देते रहेंगे। मुझे भाषण के साथ-साथ शेरो शायरी का भी फितूर है। कुछ-कुछ भूल गया हूँ। फिर प्रयास करता हूँ। हाँ तो लीजिए प्रस्तुत है दुष्यंत का एक तगड़ा शेर :—

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा उद्देश्य नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिये

□□

'चमचों' की आचार संहिता

भारत बढ़िया-बढ़िया त्योहारों का देश है। मेला हमारी भारतीय संस्कृति का एक खास अंग है। मेले में ढेर सारी चीजें बिकती हैं। प्रश्न यह है कि आप क्या खरीदते हैं। वहाँ तो भाव-ताव तय होते हैं और मेल-जोल की लीलाएँ घटती हैं। संबंधों का दायरा बढ़ता ही जाता है। मेले में सर्कस, हवाई झूला भी होता है। मिठाई, खिलौना और पाउडर, टिकली की दुकानें भी आती हैं। और तो और नाचने-गाने वाले भी आते हैं। जादूगर भी आते हैं। मेले के एक कोने में मजमा जमाए जादूगर कह रहा है। आइये-आइये पधारिये मेहरबान, कद्रदान। स्वागत है श्रीमान। आइये, पधारिये, मेहरबान कद्रदान....। आपको हाथों का कमाल और बातों की सफाई दिखाता हूँ। कोई अजूबा नहीं आपके ही बीच के एक आदमी के बारे में आपको बताता हूँ। बोल जमूरा कुछ तो बोल। चुप क्यों है?

जमूरा—क्या बोलूँ?

जादूगर—आज हमारी पहली जरूरत क्या है?

जमूरा—हमारी पहली जरूरत आज 'चमचा' है।

जादूगर—क्या कहा? रोटी, कपड़ा, मकान के बदले पहली जरूरत चमचा।

जमूरा—हाँ। क्योंकि ढंग का चमचा मिल गया तो रोटी, कपड़ा, मकान के साथ-साथ नोकरी भी मिल जाती है और फिर छोकरी भी।

जादूगर—अच्छा तो बता चमचे की पहचान क्या है?

जमूरा—चमचा क्षण-क्षण में रूप बदलता है फिर भी उसकी पहचान बताता हूँ। चेहरे पर चाशनी और कमान की तरह जबर्दस्ती झुकाई गई कमर के चोखटे में जो फिट दिखता है वही चमचा है।

जादूगर—'चमचा' कमर क्यों झुकाता है ?

जमूरा—'हुजूर' को सम्मानित करने के लिए वह कमर झुकाता है ।

जादूगर—'हुजूर' किस बला को कहते हैं ?

जमूरा—अरे सीधे बोल सीधे । नहीं तो अभी अन्दर हो जायगा । ज्यादा पागल मत बन । सुन । इतना भी नहीं जानता । जो अन्न-दाता होता है । जिसके चारों ओर भीड़ जय जयकार करती है । जो विशिष्ट मुद्राओं में बैठता है । जो विशिष्ट मुद्राओं में खड़ा होता है । और जो विशिष्ट मुद्राओं में बोलता है । हर चीज उसकी नपी तुली होती है । हर कदम संतुलित होता है । काम छोटे-छोटे लेकिन बातें बड़ी-बड़ी करता है । विजय की मुस्कान जिसके चेहरे पर हरदम खेलती रहती है । जो इक्कीसवीं सदी में ले जाता है । चमचों के लिए वही 'हुजूर' होता है । जो छलांग लगाता है । एक साथ हाईजम्प और लांग जम्प दोनों में बाजी मारता है । वही मालिक वही अन्न-दाता होता है ।

जादूगर—अच्छा । तो इसे हुजूर कहते हैं । और तब चमचा क्या काम करता है ?

जमूरा—चमचे का इतिहास बतलाऊँ क्या ?

जादूगर—अरे हाँ हाँ । पूरा इतिहास बता नहीं तो जादू देखने वालों को मजा कहाँ आयेगा ।

जमूरा—अठारहवीं सदी में चमचा घर-घर में कढ़ाई में करछुल के रूप में सब्जी बनाने के काम आता था । भारत में जब अंग्रेज राज करने लगे तो उन्नीसवीं सदी मे इसने अपना विकास किया । टोस्ट पर मक्खन लगाकर अपना कर्तव्य पूरा करने मे भिड़ गया । आजादी के बाद बीसवीं सदी में चमचे का प्रमोशन हो गया । इसने अपने दुर्लभ गुणों द्वारा 'भाट' की परम्परा को भी बहुत पीछे छोड़ दिया है । अब जो चमचे इक्कीसवीं सदी मे जाने की तैयारी कर रहे हैं वे अपने गुणों को हिमालय की बुलन्दियों तक पहुँचाने को

कोशिश में हैं। कहावत जो है न—'पीर बावर्ची भिश्ती घर/ढूंढ़ के लाओ....'इन विशिष्ट गुणों वाले चमचों की ही आजकल चाँदी है। ये चमचे हैं भी अद्भुत। बातों ही बातों में आपको खटारा मोटर में बिठालकर क्षण दो क्षण में राकेट पर घुमाने का सुख प्रदान करने की कला में दक्ष हैं। आप भी खुश। ये भी खुश। क्योंकि ये चमचे बिना हाड़ की जीभ चलाने के भी माहिर हैं।

जादूगर—तो फिर कोई चमचा दिखाओ जमूरे।

जमूरा—वो देखो आ रहा है।

जादूगर—चिल्लाता है। अरे भाई। जरा इधर आना।

चमचा—अरे नाम लेकर क्यों नहीं पुकारता ?

जादूगर—मैं तुमको पहचानता नहीं भाई। इसलिए नाम नहीं मालूम।

चमचा—क्या कहा ? तुम मुझको नहीं पहचानते। मेरा नाम चमचा है जनाब। तुमसे अच्छा तो तुम्हारा जमूरा है वह मुझे पहचानता है।

चमचा—(भीड़ की ओर मुखातिब होकर) अरे नहीं पहचाना भाइयों, माताओं, बहनों ! नहीं पहचानोगे तो गये काम से। आज का युग चमचों का है। मेरी विशेषताओं को जानों और मुझे पहचानो। नहीं तो गये काम से। सच कहूँ। मूर्ख से मूर्ख आदमी भी मुझसे सरोकार रखता है।

जादूगर—ये सरोकार क्या होता है चमचे जी महराज।

चमचा—अरे बुद्धू जादूगर। इतना भी नहीं जानते चले हो जादू दिखाने अरे सरोकार के कई अर्थ होते हैं बेटवा। सुनो। जरूरत, मतलब, आवश्यकता। कभी-कभी सरोकार का अर्थ सेवा भी होता है जादूगर। समझे कि नाहीं।

चमचा—(भीड़ की ओर मुखातिब होकर) आप लोगों को जब भी कोई जरूरत हो, कोई काम हो, मतलब हो, बड़े आफिस में, छोटे बाबू के पास- मंत्री की सिफारिश या इक्कीसवीं सदी में जाने की इच्छा हो और मेरी आवश्यकता समझें। या कभी आपकी गाड़ी बिना

दलदल में फंस जावे तो मुझको याद कर लेना। मैं सब चुटकी बजाते ही सब मामला हल करवा देता हूँ। बहुत ऊँची पहुँच है हमारी। हम चीज भी ऊँची हैं। ऊँची चीज का नाम याद रखना। भूलना नहीं। नाम है हमारा चमचा।

आम आदमी—अच्छा काम करते हो भैय्या। सबकी सेवा करते हो। हमारे दू तीन काम अटके हैं कचहरी में जरा करा देऊ। भगवान तुम्हारा भला करे।

चमचा—काम तो तुम्हारा तुरन्त हो जायगा भइया। कुछ खुरचन पानी रखे हो?....क्या कहा? नहीं रखे। तो भाग यहाँ से बड़ा आया भगवान भला करे कहने वाला। अरे पगले भगवान दुनिया में हो तो भला करे ना। भला तो करते हैं नगद नारायण। केवल नारायण की अब कुछ नहीं चलती इस जमाने में। हमारा समय मत खराब करो। हमारा नाम चमचा है चमचा। पहले चम्मच में घी-शक्कर भरो। मुँह मीठा कराओ। फिर करेंगे आपका संकट मोचन।

जादूगर—समझ गये न जमूरा दद्दा। चमचे कैसे होते हैं?

जमूरा—अभी तुम का समझे हो जादूगर चचा। कुछ नांही समझे। अब मैं तुमको बताता हूँ चमचा क्या होता है?

जादूगर—अच्छा बताओ भला।

जमूरा—चमचों ने अपनी पहचान और जानकारी के लिए आचार संहिता बनाई है जो निम्न प्रकार है। (अप्रकाशित) किन्तु पूरी की पूरी सच्ची है—

आचार संहिता के अनुसार चमचे के तीन गुण होवे है।' पहला गुण यह कि वह हरदम परछाई की तरह 'हुजूर' के साथ रहता है। जिस तरह परछाई अंधेरे में साथ छोड़ देती है उसी तरह चमचा दुर्दिनों में हुजूर का साथ छोड़ देता है। चमचे का दूसरा गुण यह माना जाता है कि चमचा जाति, धर्म, भाषा, देश, शहर और सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठा होता है। सारी सीमाओं को तोड़कर वह अपने हुजूर से प्रेम करता है। और निष्ठापूर्वक प्रेम करता है, उसके अन्त तक प्रेम करता है।

कोशिश में हैं। कहावत जो है न—'पीर बावर्ची भिश्ती घर/ढूंढ़ के लाओ....'इन विशिष्ट गुणों वाले चमचों की ही आजकल चाँदी है। ये चमचे हैं भी अद्भुत। बातों ही बातों में आपको खटारा मोटर में बिठालकर क्षण दो क्षण में राकेट पर घुमाने का सुख प्रदान करने की कला में दक्ष हैं। आप भी खुश। ये भी खुश। क्योंकि ये चमचे बिना हाड़ की जीभ चलाने के भी माहिर हैं।

जादूगर—तो फिर कोई चमचा दिखाओ जमूरे।

जमूरा—वो देखो जा रहा है।

जादूगर—चिल्लाता है। अरे भाई। जरा इधर आना।

चमचा—अरे नाम लेकर क्यों नहीं पुकारता ?

जादूगर—मैं तुमको पहचानता नहीं भाई। इसलिए नाम नहीं मालूम।

चमचा—क्या कहा ? तुम मुझको नही पहचानते। मेरा नाम चमचा है जनाब। तुमसे अच्छा तो तुम्हारा जमूरा है वह मुझे पहचानता है।

चमचा—(भीड़ की ओर मुखातिब होकर) अरे नहीं पहचाना भाइयो, माताओं, बहनों! नही पहचानोगे तो गये काम से। आज का युग चमचों का है। मेरी विशेषताओं को जानों और मुझे पहचानों। नही तो गये काम से। सच कहूँ। मूर्ख से मूर्ख आदमी भी मुझसे सरोकार रखता है।.

जादूगर—ये सरोकार क्या होता है चमचे जी महराज।

चमचा—अरे बुद्धू जादूगर। इतना भी नहीं जानते चले हो जादू दिखाने अरे सरोकार के कई अर्थ होवे हैं बेटवा। सुनो। जरूरत, मतलब, आवश्यकता। कभी-कभी सरोकार का अर्थ सेवा भी होता है जादूगर। समझे कि नाहीं।

चमचा—(भीड़ की ओर मुखातिब होकर) आप लोगों को जब भी कोई जरूरत हो, कोई काम हो, मतलब हो, बड़े आफिस में, छोटे बाबू के पास- मंत्री की सिफारिश या इक्कीसवी सदी में जाने की इच्छा हो और मेरी आवश्यकता समझें। या कभी आपकी गाड़ी बिना

दलदल में फँस जावे तो मुझको याद कर लेना। मैं सब चुटकी बजाते ही सब मामला हल करवा देता हूँ। बहुत ऊँची पहुँच है हमारी। हम चीज भी ऊँची हैं। ऊँची चीज का नाम याद रखना। भूलना नहीं। नाम है हमारा चमचा।

आम आदमी—अच्छा काम करते हो भैय्या। सबकी सेवा करते हो। हमारे दू तीन काम अटके हैं कचहरी में जरा करा देऊ। भगवान तुम्हारा भला करे।

चमचा—काम तो तुम्हारा तुरन्त हो जायगा भइया। कुछ खुरचन पानी रखे हो?....क्या कहा? नहीं रखे। तो भाग यहाँ से बड़ा आया भगवान भला करे कहने वाला। अरे पगले भगवान दुनिया में हो तो भला करे ना। भला तो करते हैं नगद नारायण। केवल नारायण की अब कुछ नहीं चलती इस जमाने में। हमारा समय मत खराब करो। हमारा नाम चमचा है चमचा। पहले चम्मच में घी-शक्कर भरो। मुँह मीठा कराओ। फिर करेंगे आपका संकट मोचन।

जादूगर—समझ गये न जमूरा दहा। चमचे कैसे होते हैं?

जमूरा—अभी तुम का समझे हो जादूगर चचा। कुछ नांही समझे। अब मैं तुमको बताता हूँ चमचा क्या होता है?

जादूगर—अच्छा बताओ भला।

जमूरा—चमचों ने अपनी पहचान और जानकारी के लिए आचार संहिता बनाई है जो निम्न प्रकार है। (अप्रकाशित) किन्तु पूरी की पूरी सच्ची है—

आचार संहिता के अनुसार चमचे के तीन गुण होते हैं।' पहला गुण यह कि वह हरदम परछाई की तरह 'हुजूर' के साथ रहता है। जिस तरह परछाई अंधेरे में साथ छोड़ देती है उसी तरह चमचा दुर्दिनों में हुजूर का साथ छोड़ देता है। चमचे का दूसरा गुण यह माना जाता है कि चमचा जाति, धर्म, भाषा, देश, शहर और सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठा होता है। सारी सीमाओं को तोड़कर वह अपने हुजूर से प्रेम करता है। और निष्ठापूर्वक प्रेम करता है, उसके अन्त तक प्रेम करता है।

उसका प्रेम पत्नी के प्रेम से भी आठ डिग्री ऊपर और अधिक विश्वसनीय माना जाता है। चमचे का तीसरा गुण भाषण पिलाने की कला में निष्णात होता है। इसी कला के कारण आज-कल छुटभंय्ये नेताओं को भी ऊँचे ग्रेट का चमचा माना जाने लगा है। वे भाषण अच्छा देते हैं। घूम-घूम कर प्रचार करते हैं और अच्छा समाँ बांधते हैं। बहते पानी की तरह उनका जीवन होता है। एक बगल में बिस्तर रखते हैं और दूसरी बगल में प्रचारिका। जो प्रचार के समय प्रचार करती है। सेवा के समय सेवा। ये सब कहते हैं—'सदा सत्य बोलो' का नारा अब आउट आफ डेट हो गया। उसके स्थान पर सब के सब धर्मराज युधिष्ठिर की तरह 'अश्वस्थामा हतो नरों व कुंजरो' के अनुरूप सत्य बोलते हैं। कभी-कभी इस प्रकार भी सत्य बोलते हैं। क्या करूँ भाई। दूसरो की सेवा के लिए मुझे कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। दिन-रात दौड़ना पड़ता है। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से ठर्रा की जगह रम पीना और पानी के बदले बीयर पीना ही मुझे रास आता है। मूमफली की जगह बादाम और चना मुर्रा के बदले काजू-किसमिस का भोग लगाना मेरा अधिकार हो जाता है। यह सब उपलब्ध कराना आपका कर्त्तव्य भी होता है। ऋषियों ने भी कहा है, 'भूखे भजन न होय गोपाला, ले लो अपनी कंठी माला' जब संतों और तपस्वियों के लिए पेटपूजा जरूरी है तो फिर मैं बीसवी सदी का एक छोटा चमचा हूँ। इक्कीसवी सदी में जाने की चाहत लिए अन्त में मैं चमचा समुदाय की ओर से यही निवेदन करना चाहता हूँ नम्रतापूर्वक। आप सबके लिये मेरे हृदय में वैसी ही भक्ति है जैसी राम के प्रति हनुमान के मन में थी। जैसे पत्नीव्रता होती है वैसी ही हम हुजूरव्रता हैं। लेकिन उसी समय तक जब तक आप हमें चमचागिरी के लिये भरपूर पारिश्रमिक देते रहेंगे। मंथरा की बात दुहराना चाहता हूँ जो एकदम सच्ची है—

कोई नृप होय हमे का हानी।
चेरि छाँड़ि के होबे रानी॥

□□

फुटपाथ के कुत्ते

पशु-पक्षी से प्रेम करना हमारी सांस्कृतिक विशेषता है। वजनदार बात यह है कि भारतीय संस्कृति में प्रेम की महत्ता सर्वोपरि है। प्रेम करने के साथ-साथ उस सद्‌गुणों को आत्मसात कर हम अपना विकास करने के आदी हैं। गाय, बकरी, सूअर, बैल, कोयल, चीता, हिरण, बिल्ली, तोता, मैना और हाथी के साथ-साथ घोड़े में से कुछ को हमने पालतू बना लिया है। उनमें ही एक प्राणी होता है—"कुत्ता"। कुत्ते हर गली में, हर मोहल्ले में, हर गाँव में, हर शहर में दिखलाई पड़ते हैं। "कुत्ता" अपने ढेर सारे सद्‌गुणों के कारण बहुत लोकप्रिय है—भारतीय जनमानस में। जब किसी कुत्ते का कर्म रूपी पेड़ फल देने लगता है तो अट्टालिकाओं के वातानुकूलित शयनकक्ष में अप्सराएँ उन्हें आदर और सम्मान के साथ आमंत्रित करती है। दोनों एक दूसरे के पूरक बनते हैं। एक वर्गीय समाज की संरचना होती है। दोनों एक दूसरे को पाकर गौरवान्वित होते हैं।

हिंदी साहित्य में स्वामिभक्ति का प्रतीक है कुत्ता। कुत्ता उर्दू की वफादारी को भी साकार करता है। पूंछ हिलाना उसका स्वभाव है। पूंछ टेढ़ी रखना उसकी मजबूरी है। फिर भी अपनी टेढ़ी पूंछ हिलाकर वह अपनी उपस्थिति, औकात और विश्वसनीयता की जानकारी बराबर देता है। दुत्कारे जाने पर भी कूं कूं करते हुए मालिक के पैरों में लेटना उसकी आदत है। डंडे और गालियाँ खाकर गांधीवादी असहयोग की भावना उसमें घर कर चुकी है। अहिंसा उसका सबसे बड़ा अस्त्र भी है और शस्त्र भी। इसे वह शास्त्रसम्मत मानता है। परंतु अकेले में मौका पाते ही चोरी-चोरी बिल्ली के चीथड़े-चीथड़े कर डालता है। मुंह में लगा खून पोंछकर फिर से शाकाहारी जीवन की अनिवार्यता पर बल देता है। कुत्ते का यह अद्‌भुत चरित्र ही उसकी सफलता का राज बन जाता है। वैसे भी साहित्य

में "मुँह में राम बगल में छुरी" जैसे मुहावरे ऐसे कुत्तों के चरित्र को स्पष्ट करने के लिये ही गढ़े गये हैं।

कुत्ते के रंग उसके रूप और नस्ल के ढेर सारे हैं। देशी कुत्ता और विदेशी कुतिया की जोड़ी चर्चित होती है फिल्मी जोड़ी की तरह। खास विदेशी कुत्ते पालना भी कुछ की आदत होती है। कोई झबरैला कुत्ता पसंद करता है, किसी को काले कुत्ते की खोज रहती है तो कोई दूध की तरह झकाझक सफेद कुत्ते पर ही मेहरबान होते है। बुलडाग बहुत कम लोग पालते हैं क्योंकि बुलडाग की आवश्यकताओं को मेनटेन करना और उस पर कन्ट्रोल रखना दोनों खतरनाक होता है फिर भी जिनमें सामर्थ होती है वे पालते हैं बुलडाग।

किसी भी जाति का हो कुत्ता-कुत्ता ही होता है। कुत्तों की भी अपनी-अपनी जाति के अनुसार पहचान होती है। सबकी अलग-अलग आचार संहिताएँ होती हैं। वे भी समय देखकर बात करते हैं। आदमी पहचानते हैं। घ्राणशक्ति तेज होती है, इसलिए हवा के रुख और उसमें घुली बारूदी गंध या रजनीगंधा सूँघकर ही कदम बढ़ाते हैं आगे। कुत्ता इतना चतुर रहता है कि वह भूत का विश्लेषण करता है। वर्तमान की लगाम खीचकर रखता है और भविष्य पर भी न भूँकने वाली पैनी नजर रखता है।

लाभ-हानि के मौलिक गणित में कम्प्यूटर को भी पीछे छोड़ देते हैं—कुत्ते। स्थितियों पर इनकी चौकसी सीजन को चौपट को भी मात कर देती है। अवसर के अनुरूप समझदारी दिखाने का जबर्दस्त गुण ही इनकी सफलता का राज होता है। इसलिये अवसर देखकर कुछ कुत्ते भौंकते हैं। कुछ मौन साध लेते हैं। संकट के समय मौन साधना संतों का काम होता है। इस सूत्र में उनका विश्वास है। समय और भाग्य बड़ा बलवान होता है। समय-समय की बात रहती है। तलवे चाटने वाले कुत्ते भी गुर्राने लगते हैं। कुछ कुत्ते भौंक कर अपने आपको शेर बताना चाहते हैं। पर जब वे देखते हैं उनका भौंकना "गणित के सवाल में हासिल आया शून्य"

की तरह हो गया है, तो वे भौंकना छोड़कर फिर से तलवे चाटने लगते हैं। कुत्ते पूरे जीवन की पृष्ठभूमि में दुहाई देते हैं।

कुत्ता उवाच : मालिक मेरे आका। मेरा विश्वास कीजिये मैं स्वामि-भक्त हूँ।

मालिक : (चेहरे पर तनिक मुस्कान की रेखा के साथ)—हूँ।

कुत्ता : मैंने पूरी जिन्दगी आपके खानदान की सेवा की है। मैं आपका सच्चा और वफादार सिपाही हूँ। मैं आपको गोद में खिलाया है। अँगुली पकड़कर चलना सिखाया है।

मालिक : (हँसते हुए) ठीक है। ठीक है।

कुत्ता : आप सर्वशक्तिमान हैं। आप गाड फादर है। दूसरे कुत्तों ने आपके कान भर दिये हैं। मैं....

मालिक : नो। नो, नो, नो।

कुत्ता ; मैं सच कहता हूँ। मैंने नमक खाया है आपका। मैं अपनी अन्तिम साँस और खून की आखिरी बूँद तक मैं आपकी चौखट पर माथा टेकता रहूँगा।

ऐसे डायलॉग बोलने में अधिकांश कुत्ते दक्ष होते हैं। इतनी चिरौरी करने के बाद भी यदि मालिक दुत्कार देता है, तो कुत्ते का स्वर बदल जाता है। यह बदलती हुई युगीन चेतना के स्वर में स्वर मिलाकर भौंकने लगता है। तलवे चाटना छोड़कर सीधे काटने के प्रयास में जुट जाता है। कहता है—मालिक-नौकर का युग बीत गया। सब बराबर है। यह निरंकुशता और तानाशाही नहीं चलेगी। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर यह आघात आखिर कब तक? मनमानी नहीं होने देंगे।

दूसरी तरफ कुछ कुत्ते जानते हैं उनके दाँत तोड़े जा चुके हैं। सपेरे की चालकी ने उसे विषहीन कर दिया है। अब वे भीतर से खोखले हो चुके है। अतः वे बेचारे घूम-घूमकर भौंकते हैं। भौंक-भौंक कर ही आत्मतुष्टि पाते हैं ताकि सब समझें भौंक रहा है तो कभी काट भी देगा। लेकिन चतुर जन समझते हैं ये गरजने वाले बादल हैं, बरस नहीं सकते।

वे कुत्ते के भौंकने को मुस्कुराते हुए स्वीकार कर लेते हैं। वे जानते हैं कुत्ते का स्वभाव ही ऐसा जो रोटी के टुकड़े डालता है वे उसके आगे ही दुम हिलाते हैं।

इसी प्रकार कुछ कुत्ते बाथरूम फुहारे के नीचे "हम तुम कमरे में बंद हों और चाबी खो जाय" गुनगुनाते हैं। कभी अबूझमाड़, तो कभी झाबुआ तो कभी बस्तर के "घोटुल" देखने में ही अपनी शान समझते हैं। ये लोक कला, लोक संस्कृति और उन्मुक्त लोक जीवन को नजदीक से देखते हैं। पंजाब समस्या पर ये नहीं सोचते और न ही उस ओर मुँह करके बात करते है। इनका आदर्श तो बस यही "हम तुम कमरे में...." इन कुत्तो ने आदमी ने बहुत कुछ सीखा है। ऐसे कुत्तों के बारे में आम आदमी अपने विचार इस प्रकार प्रगट करता है:

> बैठे हुए हैं तख्त पर फुटपाथ के कुत्ते,
> बस भौंकना ही जानते फुटपाथ के कुत्ते।
> कल तक न थी नसीब किराये की गाड़ियाँ,
> अब दीखते हैं प्लेन में फुटपाथ के कुत्ते॥

□□

अभिनन्दन की चाह

बड़े ही उमंग, उत्साह और धूमधाम से शोभायात्रा निकाली जा रही है। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी गणपति वदन और अभिनंदन का मौसम आ गया है। प्रचार-प्रसार जोर-शोर से हो रहा है। चूहे पर सवारी गौठवी गणेश की आकृतियाँ घर-घर पूजी जा रही हैं। कलाकारों ने अब गणेश को हेलीकाप्टर और इस्पाला पर भी सजाया है। दूसरी ओर मंच पर नेताओं और साहित्यकारों के अभिनंदन समारोह मे तेजी से वृद्धि हुई है। चमकते उत्तरीय और शानदार दुशालों के बीच सकुचाते और लजाते चेहरे की बानगी देखते बनती है। समारोहों में मुख्य आकर्षण का केन्द्र है सुनहरे फ्रेम में सजे प्रशस्ति-पत्र।

प्रसिद्धि ज्ञानमय न होकर प्रसिद्धिमय हो गई है। छत्तीसगढ़ में "पोला" त्योहार के अवसर पर बैलों को सजाया-सँवारा जाता है। उस दिन उसकी पूजा की जाती है। अनेक आयोजनों में उनकी महत्ता का बखान होता है। इसी तरह शिक्षक दिवस के दिन शिक्षकों की महत्ता बखानी जाती है। राष्ट्रपति से लेकर प्रधानमंत्री के संदेश पढ़े जाते हैं। शिक्षकों का एक दिवसीय सम्मान किया जाता है। भूतपूर्व शिक्षकों की पूछ होती है। निवृतमान शिक्षकों को खोज-खोजकर समारोह की अध्यक्षता हेतु बुलाया जाता है। गुरुब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश्वर कहकर उन्हें चने के झाड़ पर चढ़ाया जाता है। सस्वर सुरीले कंठो से स्वागत होता है एक दिन फिर वही ढाक के तीन पात। परन्तु वर्ष में एक बार उनके अभिनंदन के लिए सूची बनाई जाती है। अभिनंदन करवा सकने की योग्यता सिद्ध करवाने के लिए आवेदन पत्र भरवाएँ जाते हैं। उनमें से चुन-चुनकर अभिनंदन किया जाता है। "राष्ट्र-निर्माता" की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

परिवार मे भी अभिनंदन के इस एक दिवसीय ज्वर ने अपना प्रभाव दिखलाया है। घर मे अक्सर दुत्कारे जाने वाले बच्चे के बर्थ डे के अवसर पर उसका अभिनंदन किया जाता है। उसे नये कपड़े पहनाए जाते है। मिठाई खिलाई जाती है। इसी क्रम में परिवार की महत्वपूर्ण इकाई पत्नी भी लाभान्वित होती है। हमेशा पति की प्रताड़ना सहने को मजबूर पत्नी "मैरिज डे" की प्रतीक्षा करती है। इस दिन व्यस्त पति भी पत्नी को पिकनिक पर ले जाता है। इच्छानुसार मार्केटिंग में सहयोग देता है। पत्नी अपने आप को नई नवेली दुल्हन की तरह समझने लगती है। कभी शर्माती है, कभी रिझाती है। सब कुछ जानती है, समझती है फिर भी अपने एक दिवसीय अभिनंदन पर बहुत खुश होती है। परिवार में अधिकतर उपेक्षा झेलने वाले बुजुर्गों का अभिनंदन मरणोपरान्त किया जाता है। प्यार के दो बोल के लिए तरसते दुनिया छोड़ देते हैं, तब तेरहवी के दिन ब्राह्मण भोज और दुनियादारी में उनके अभिनन्दन की झलक मिलती है। जीते जी जब उनकी अभिनन्दन की चाह पूर्ण नहीं होती, तो बाद में इन माध्यमों से मृतात्मा को शांति पहुंचाने का प्रयास किया जाता है।

अभिनन्दन करवाने की अनेक रीतियां हैं। आप कितने वाकपटु-व्यावहारिक और दिलेर हैं? यह सोचना-समझना आपका काम है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो कवि सम्मेलनों का ठेका लेते हैं। उसी प्रकार कुछ संस्थाएँ ऐसी होती हैं जो अभिनन्दन का ठेका लेती हैं। बिल्कुल उसी तरह जैसे मंदिर में आपके चढ़ाने और आपकी भेंट-पूजा के मापदण्ड के अनुसार आपको प्रसाद मिलता है। आप जितनी बड़ी कम्पनी को ठेका देंगे, आपका अभिनन्दन उतना ही गरिमामय होगा। अभिनन्दन के पूर्व आप यह भी देखिए कि आपका संबंध किन-किन संस्थाओं से है? यदि आप उदरता-पूर्वक अपनी अंटी ढीली कर सकते हैं तो अनेक संस्थाएँ सम्मिलित रूप से आपका अभिनन्दन समारोह आयोजित करने में सक्रिय नजर आयेंगी।

सफल अभिनन्दन समारोह जब आयोजित किया जाता है, तो सबसे पहले हजारों की संख्या में श्रोता एकत्रित किए जाते हैं। फिर अपनी वाणी

द्वारा आपकी महत्ता प्रतिपादित करने वाले वक्ता आमंत्रित किये जाते हैं। परन्तु वक्ता के संबंध में भी आप जितना गुड़ डालेंगे, उतना ही मीठा होगा शर्बत—कहावत सही सिद्ध होती है। यदि आप प्रथम श्रेणी में आने-जाने वाले वक्ता को ससम्मान बुलवाते हैं तो आपकी लक्ष्मी की कृपा से सरस्वती वक्ता की जिह्वा पर नर्तकी की लुभावनी मुद्रा में थिरकती है और वक्ता अपने मुखारविंद से गुणगान करता हुआ रस वर्षा करता है। बुलाए गये श्रोता यह भी जानते हैं कि कब और कहाँ तालियों की गड़गड़ाहट से सभाभवन गूंजना चाहिए। वक्ता और श्रोता दोनों मिलकर आपके अभिनन्दन समारोह में चार चांद लगा देते हैं। अभिनन्दन समारोह में यदि विशिष्ट विभूतियां हों, ठेका भी बड़ा हो तो न्यूजपेपर और महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में तो आप फ्लेश होंगे ही। दूरदर्शन पर भी आँखों देखा हाल आप देख सकते हैं।

अभिनन्दन का संस्मरण से, चोली दामन का संबंध है। जितने उच्च-स्तरीय लोग आपके संबंध में अपने संस्मरण सुनाते है, समारोह उतना ही अधिक सफल होता है। प्रश्न इस बात का है कि आपके बालसखा, आपकी छवि कितनी निखारते हैं। यदि कोई महत्वपूर्ण नेता या साहित्यकार यह कहता है कि आज हमारे मित्र का अभिनन्दन हम करा रहे है, इन्हें आप लोगों ने बहुत देर से पहचाना। बचपन में ही कविता लिखकर इन्होंने अपनी योग्यता बहुत पहले सिद्ध कर दी थी। हीरे के ऊपर जमी धूल को आपने पोंछकर आज उसे पहचाना है। वह दिन दूर नहीं जब ये नगर के साथ-साथ हमारे देश का भी नाम रोशन करेंगे। इनकी प्रतिभा और चिंतन को समर्पित इन दो पंक्तियों के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ :

चिंतन हमारा विष में इतना, सन चुका है दोस्तों।
एक चाकू की तरह थी, छन चुका है दोस्तों।

□□

जलवे विधायक सीट के

क्या पता ? किस्मत का बल्ब कब जल उठे ? कोशिश तो करके देखो । "चढ़ जा बेटा सूली पर—भला करेंगे राम" की दर्शनीय मुद्रा में टैक्सी स्टैंड का स्पेशल हॉकर, टैक्सी में ठूंस-ठूंसकर सवारी वैसे ही भरता है, जैसे बोरों में दबा-दबाकर कपास या अन्य कोई वस्तु भरी जाती है । एक टोपीधारी नेतानुमा आदमी से टैक्सी के उस स्पेशल हॉकर ने कहा—डायरेक्ट भोपाल चाहिए, विधायक सीट खाली है । केवल एक सीट । आइए टैक्सी की बालकनी में बैठने का मजा लीजिये । विधायक सीट खाली है, केवल एक सीट ।

नेतानुमा आदमी ने गुस्से से हॉकर को कहा—क्यों बे ? मजाक करता है । कल का छोकरा बड़ी-बड़ी बातें करता है । टैक्सी धमतरी जा रही है या भोपाल ?

हाकर : साहब नाराज क्यों होते हैं ? देख नहीं रहे—आजकल छोकरों का ही जमाना है । हममें से ही धड़ाधड़ मुख्यमंत्री बन रहे हैं । यह सब अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष की देन है । असम का जलवा देखा ।

नेतानुमा आदमी : ठीक है । बकबक मत कर । सीधे से बता टैक्सी कहां जा रही है ।

हाकर—साहब ! टैक्सी धमतरी जा रही है । परंतु इसमें केवल एक विशेष सीट । जो देखिए सामने सवारियों के बीचोंबीच दूज के चंदा सी दिखलाई पड़ रही है । उसे ही हम विधायक सीट कहते हैं ।

नेतानुमा आदमी : तो फिर भोपाल चलो डायरेक्ट । क्यों चिल्लाता है ?

हाकर : ऐसा है मालिक । हमारा भी पेट है और यह टैक्सी स्टैंड का मुहावरा हो गया है । जैसे ही हम चिल्लाते हैं—विधायक सीट खाली है ।

डायरेक्ट भोपाल चलो। तो आसपास घूमती सवारियाँ समझ जाती हैं कि अब टैक्सी छूटने वाली है।

नेतानुमा आदमी : परंतु अब भविष्य में डायरेक्ट महासमुंद और डायरेक्ट दुर्ग कहा करो।

हाकर : ठीक है साहब। आप बैठिए तो। आप जैसा कहते हैं वैसा ही कहूँगा। स्पेशल हाकर फिर चिल्लाने लगा। केवल एक सीट। विधायक सीट खाली है। डायरेक्ट भोपाल ! अरे नहीं। गलती हो गई। डायरेक्ट दुर्ग चलिए।

नेतानुमा आदमी : शाबास ! बहुत अच्छे। बस जल्दी स्टार्ट करवा दे।

हाकर : आप जहाँ कहेंगे, चलेंगे साहब। गाड़ी आपकी है। परन्तु यह जो विधायक सीट है ना। जोवन में अनेक संघर्षों से मिलती है। आप बैठकर देख लीजिए। एम० एल० ए० बनने के लिये कितनी कोशिश करनी पड़ती है। उससे भी अधिक संघर्ष टैक्सी की इस विधायक सीट पर बैठने पर करना पड़ता है।

इस विधायक सीट के गुण अद्भुत हैं। इस सीट पर बैठते ही आँखें मुँदने लगती है और यात्री टैक्सी में बैठे-बैठे। थोड़ा जागते, थोड़ा सोते सुनहरे स्वाब देखने लगता है। कहते है, संगत का असर होता है। जरूर ! हाकर से बारबार यह सुन-सुनकर कि विधायक सीट खाली है। उस विधायक सीट पर बैठते ही बेचारा यात्री, विधायक की महत्ता के बारे में सोचने के लिये बाध्य हो जाता है। मन ही मन विधायक बनने का सपना सजाने, सँवारने लगता है। आनंद मगन हो जाता है आप ही आप। "सूत न कपास जुलाहे में लट्ठम लट्ठा" वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। सपने में यह सोचता है :

प्रजातंत्र मे विधायक होना गौरव की बात है। सत्यनारायण की कथा में जिस तरह लीलावती चर्चित होती है, उसी तरह प्रजातंत्र म विधायक चर्चित होता है। परिवार में किसी एक सदस्य का विधायकी ...

परिवार के लिये सुख, शांति और समृद्धि के साथ-साथ सौभाग्य की बात मानी जाती है। भीड़ तंत्र में विधायक पद पाने वाला यदि चतुर और दृष्टि सम्पन्न होता है तो वह जनता जनार्दन का भला तो करता ही है। इष्ट मित्रों और सगे सम्बन्धियों के दुर्दिनों को भी बदलता जाता है सुख भरे दिन में। कभी-कभी भीड़ तंत्र में विधायक ऐसे लोग भी बन जाते हैं जो विधान सभा और विधायक का अर्थ नहीं जानते। फिर भी धीरे-धीरे जागृति फैल रही है। मूर्खानंद से लेकर चतुरानंद तक सभी यह तो कह ही लेते हैं : मैं जनता की सेवा करूँगा। इस क्षेत्र की समस्याओं को जड़ से उखाड़ फेंकूंगा।

चाहे जो हो, बावन पत्ते के खेल में जोकर का जो महत्व होता है उससे अधिक महत्व आज की राजनीति में विधायक का है। महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों की संचित पूंजी उनके विश्वासपात्र विधायकों की संख्या मानी जाती है। विधायक सीट पर बैठा यात्री विधायक बनते ही मुख्यमंत्री का बायाँ हाथ बनने की सोच में डूबा रहता है।

अचानक ही सड़क पर गति अवरोध सामने आ जाता है। तेज गति से दौड़ती हुई जीप उछलती है और विधायक सीट पर बैठे विधायक बनने का सपना देखने वाले का सर लोहे की राड से टकरा जाता है। सपना भंग हो जाता है। सर पर गूमड़ उभर आता है। अब सहलाते रहिए। जब सर्पाकार मोड़ आते हैं और स्टेरिंग तेजी से घूमती है, तो भावी विधायक बाजू-बाजू बैठी सवारियों की ओर लुढ़क जाता है। सवारियाँ देती हैं धक्का। वह मन मसोसकर रह जाता है।

इसी प्रकार जब देश में खिचड़ी सरकार की स्थापना हुई थी, लाल बसों मे लिखा होता था—"विधायक सीट" भीतर प्रारम्भ की कुछ सीटों पर। सम्माननीय विधायक महोदय के आने पर, सीट खाली करें। यह सीट उनके लिये सुरक्षित है। हाँ भाई आरक्षण का जमाना है। चाहे रेल में यात्रा करना हो या बस में। पहले आरक्षण कराइए। ठीक उसी प्रकार कम योग्यता के आधार पर ऊँची नौकरी पाना हो तो आरक्षित जाति में जन्म

लीजिए और आरक्षित कोटे से पद पाइए। अगर अब भी आप नहीं समझे तो किसी की गोद में बैठ जाइए तथा उनका दत्तक पुत्र होने का गौरव प्राप्त कीजिए। कुछ "विधायक सीट" भी आरक्षित है। चाहे तो उसमें ही अपने आपको आजमाइए। हमारा तो इतना ही कहना है :

ठोकरें खा के न सँभले तो मुसाफिर का नसीब।
राह में फर्ज अदा करता है पत्थर अपना॥



रेल चली भई रेल

"आपकी यात्रा मंगलमय हो"

सुरीली आवाज कानों से टकराती है और यात्रा का प्रारंभ होता है। अनेकों बार गर्मी के दिनों में भीड़ अधिक होने पर आप रेल की छतों पर बैठकर भी यात्रा करते हैं। पायदान पर खड़े होकर यात्रा करते हैं, क्योंकि भीतर ठसाठस सवारियां भरी होती हैं। इन सबके बावजूद आपकी यात्रा मंगलमय होती है—यह आपके लिये प्रसन्नता की बात है।

"आपकी यात्रा मंगलमय हो।"

इस कामना के साथ आपकी शुभ यात्रा का प्रारम्भ रेलवे स्टेशन अपनी उद्घोषणा में कभी-कभी करता है। इसके मूल कारण पर कभी आपने गौर किया। जब यातायात के साधनों का विकास पूरी तरह नहीं हुआ था, तब परिवार एवं गांव के लोग तीर्थयात्रा पर जाया करते थे तब वे गांव में सभी से मिलते थे, भेंट करते थे क्योंकि तीर्थयात्रा से वापस आना हो या न हो। जबसे यातायात के क्षेत्र में प्रगति हुई है—तीर्थयात्रा से जीवित लौटने का प्रतिशत बढ़ा है। यदि दुर्घटना नहीं हुई तो।

"आपकी यात्रा मंगलमय हो"

"७२ यात्रियों के बैठने के लिये" अंकित रेल डिब्बे में २०० से अधिक यात्री सुविधापूर्वक बैठ जाते हैं। मौज में यात्रा करते हैं। उनकी आदत जो पड़ गई है। रेल विभाग सब कुछ जानता है, समझता है। इसीलिये प्रत्येक रेलवे स्टेशन पर चमचमाता हुआ बोर्ड नजर आता है। "मे आई हेल्प यू।" रेल विभाग अपने रेल कंडक्टर और टी० टी० आई० के रूखे व्यवहार, यात्रियों के प्रति उपेक्षित दृष्टि के बारे में भी जानता है। इसलिये गंदे डिब्बों में मजबूरी में बैठे और चढ़ते-उतरते समय धक्का खाते यात्रियों को वह बड़े ही प्रेम से पूछता है? "मैं आपकी क्या सहायता कर सकता

हूँ।" ऐसे चमचमाते हुए बोर्ड प्रत्येक रेलवे स्टेशन की व्यवस्था को गौरवान्वित करते हैं क्योंकि अधिकांश समय वहाँ मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। जब ट्रेन छूटने को होती है तब काले कोट वाले वहाँ आते हैं और यात्रियों की सहायता कभी गुर्राते हुए तो कभी मुनमुनाते हुए करते हैं। हाँ, कभी-कभी जब विशिष्ट अधिकारी या मंत्री महोदय ट्रेन से यात्रा करते हैं तो ये भौंकना भूलकर उनके आस-पास डिब्बे की व्यवस्था देखते हुए दुम हिलाते हैं। रेल की प्रगति और उसके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं के बखान में जुट जाते है। जब कभी व्ही, आई. पी. आते हैं तो रेल स्टेशन में खोजने से भी गदगी नजर नहीं आती। स्टेशन सर से पैर तक दुल्हन की तरह सजा हुआ नजर आता है।

नेता और मंत्री जी, इस ओर जाते हैं ऐसी भी व्यवस्था के दर्शन उन्हे रेल विभाग करवाता है। अतः रेल के लिये नये पुल का या रेलवे स्टेशन का अथवा नई रेल लाईन का उद्घाटन करते हुए वे अपने भाषण में शान से कहते हैं—रेलों ने बहुत प्रगति की है। देशवासियों को भावनात्मक रूप से जोड़ने में रेलों की महत्वपूर्ण भूमिका है। रेल के चक्के देश की प्रगति के चक्के हैं। रेलों के माध्यम से ही विश्वबंधुत्व की भावना का प्रचार और प्रसार हो रहा है। भारतीय रेलें अपनी आपसी सदाशयता और आप सब की सुविधाओं के लिये पूरे देश में दौड़ रही हैं। रेलें हमें केसर की क्यारी से कन्याकुमारी तक जोड़ रही है। रेलों ने बहुत प्रगति की है।

"आपकी यात्रा मंगलमय हो"

एक कंडेक्टर के पीछे २५-३० यात्रियों को प्रत्येक स्टेशन पर भागते, इधर से उधर दौड़ते यात्रियों को देखकर ही आप कह सकते हैं—सचमुच रेल विभाग ने कितनी प्रगति कर ली है। रेल यात्रा में हम अनेक बातें सीखते हैं, जो हमें जीवनपर्यन्त काम आती है। पहली महत्वपूर्ण बात तो यह है कि रेलयात्रा हमारे आत्मविश्वास में वृद्धि करने का निशुल्क टानिक है। धक्का-मुक्की में मजबूती के साथ खड़े रहने और कंडक्टर के फटकार

को सहन करने की क्षमता-योग्यता बढ़ाने का अवसर हमें रेल विभाग अवसर प्रदान करता है। इसके साथ ही कैसी भी परिस्थिति में जीने का, संघर्ष करने का माद्दा भी बार-बार रेल द्वारा यात्रा करने से ही आता है। पनियल चाय और मिट्टी तेल की गंध से महकती कॉफी के साथ ही अपने ढङ्ग का अनोखा और दुर्लभ भोजन करते हुए आपकी तबियत बाग-बाग हो जाती है।

"आपकी यात्रा मंगलमय हो"

दूसरी बात जो हम सीखते हैं, वह है गहन अंधकार में भी सफलता की किरण का संबल थामे रहना। तूफानों के बीच भी आशा का नन्हा सा दीपक जलाये रखना। घूंघट में छुपा चेहरा सभी देखना चाहते हैं, चाहे उसका एक बाजार बंद क्यों न हो? या पूरा चेहरा सिल जैसा टंका हुआ क्यों न हो? परन्तु हाय रे पर्दा। क्या कहने तुम्हारे। कोई बात तो है? रेल के डिब्बे में बंधी जिन्दगी के जानकर कंडेक्टर किसी को घूंघट उठाने ही नहीं देते। मजे की बात यह है कि बार-बार कंडेक्टर के मना करने पर भी आप विश्वास का दामन नहीं छोड़ते और गाड़ी चलते ही उसके पीछे-पीछे डिब्बे में सवार हो जाते हैं। अंत में आपकी समझ और सदाशयता में आप चुपके से कंडेक्टर की हथेली गर्म कीजिए, आपको बर्थ मिल जायेगी।

"आपकी यात्रा मंगलमय हो"

तीसरी बात जो आप और हम सीखते हैं वह है समय की पाबंदी। समय की पाबंदी क्या सिर्फ रेलों के लिये है। नहीं सबके लिये है। ऐसे वाक्यों को सुनने और पढ़ने से हमें रेल विभाग की कर्तव्यनिष्ठा का बोध होता है। रेलों की तरह हम भी जीवन में समय की पाबंदी का महत्व सीखते हैं। हम १५ मिनट लेट पहुंचते हैं स्टेशन तब तक रेल जा चुकी होती है। इंडेफिनिट लेट को डेफिनिट में बदलते हुये माइक से प्रसारित होता है। ४२० डाउन गाड़ी ४ घंटे लेट चल रही है। ट्रेन का इंतजार

कीजिये। "आपकी यात्रा मंगलमय हो" इंतजार करते हुए बचपन की स्मृतियां आकार लेने लगती हैं :

रेल चली गई रेल, देखो ये बंदर का खेल
एक के पीछे एक आओ, रेल बनाओ रेल बनाओ
छुक-छुक, छुक-छुक, छुक-छुक, छुक-छुक रेल चली गई रेल
देखो ये बंदर का खेल, रेल चली गई रेल।



उद्घाटन मंत्रालय का उद्घाटन

उद्घाटन रोज होते हैं। स्वतन्त्र भारत में उद्घाटन की शानदार परम्परा का शुभारम्भ हो चुका है। श्रृंगार सदन से लेकर साड़ी संसार की दुकानों का उद्घाटन होने लगा है। सुहाग महल और सोप फैक्ट्री का उद्घाटन छुटभैया जमात के लोग करते हैं। बड़े-बड़े मंत्री शिलान्यास करते हैं। कभी अस्पतालों का, कभी जेलों का, गाँव-गाँव में ढेर सारी पाठशालाओं का उद्घाटन दीप जलाकर किया जाता है। फिर उनमें अंधकार अपना रंग जमाता है। कभी-कभी भूमि पूजन होते हैं। वन महोत्सव में चाँदी की खुरपी से गड्ढा खोदने का अभिनय करते हुए नन्हा पौधा लगाकर उद्घाटन किया जाता है, जिससे कुछ घंटों बाद बकरी की आत्मा प्रसन्न होती है। अधिकांश शिलान्यास नींव के ऐसे पत्थर बन जाते हैं जिन पर कोई महल खड़ा नहीं हो पाता।

हिंदुस्तान में हम अपने गौरवशाली अतीत की बातें करते कभी नहीं थकते। पुष्पक विमान से लेकर कृष्ण के विराट रूप की कहानी और राणा-शिवा की बहादुरी से लेकर पृथ्वीराज चौहान के शब्दभेदी बाणों की चर्चा बार-बार करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इन्होंने समय-समय पर भारत का गौरव बढ़ाया है, परन्तु बीते हुये कल में डूबकर ढोल पीटने का मजा ही और है। उसी प्रकार उद्घाटन करने का मजा भी और ही है। किसी भी सड़क के किनारे उद्घाटन चमचमाते दुधिया फर्श पर हीरे-मोती की तरह जड़े जाते हैं। या मुख्य द्वार पर अंकित होकर गौरवान्वित होते हैं। उद्घाटन कर्ताओं को अमरत्व की दिशा में यह एक बढ़ा हुआ कदम प्रतीत होता है। उन्हें अपार सुख की प्राप्ति होती है। समाज में मान बढ़ता है। जीभ की खुजली मिटती है। रोब जमता है। प्रतिस्पर्धियों को जमकर पटकनी देते हैं। उद्घाटन से जनसंपर्क भी बढ़ता है। स्वागत भी भरपूर होता

है। चमचों के बीच भी साख बढ़ती है। सरकारी दौरा कार्यक्रमों द्वारा कर्तव्यनिष्ठा की मुहर भी लग जाती है। पाँच वर्ष में एक दो बार दर्शन देने वालों की श्रेणी से साफ बच जाते हैं। जनता के व्यंग्य बाणों से, उद्घाटन कवच का काम करता है। चुनाव के समय आत्मविश्वास से कहते हैं मैं तो लगातार आपकी सेवा में आता रहा हूँ अर्थात आगामी विजय की भूमिका बनाते चलते हैं। इसलिये किसी-न-किसी उद्घाटन की योजना वे अवश्य कार्यान्वित करते हैं।

रिकार्ड तोड़ने में भारत के क्रिकेटर भी आगे रहे हैं। विजेता की तरह हारकर भी रिकार्ड तोड़ते हैं। जीतकर भी रिकार्ड तोड़ते हैं। राजनीति में बहुगुणा और वाजपेयी हारकर रिकार्ड तोड़ते हैं। फिर कविता लिखते है। कहते हैं प्यादे से फर्जी भयो टेढ़ो-टेढ़ो जाय। पैदली मात की भी खुशी अलग होती है। सच कहा है। उसी प्रकार उद्घाटन में भी रिकार्ड टूट रहे हैं। जल्दी से जल्दी कुर्सी पर रहते-रहते उद्घाटन की सेन्चुरी मारना चाहते हैं। जो शतक मार चुके हैं, वे दोहरे शतक की तैयारी में है। इसलिये खूब उद्घाटन करते हैं।

समाज सेवा का व्रत लेने वाले अवसर की खोज में रहने वाले समाज सेवी आपस में चर्चा कर रहे थे। १९८६ के शांतिवर्ष के बाद अब १९८७ को उद्घाटन वर्ष के रूप में मनाया जाना चाहिये। उद्घाटन उसके लिये विधिवत् पुरस्कारों की घोषणा हो। जो १९८७ में सर्वाधिक उद्घाटन करेंगे, उन्हे उद्घाटन शिरोमणि की उपाधि से विभूषित किया जाये। क्योंकि जनता तो कभी उद्घाटन करती नहीं। यह वर्ष उद्घाटन प्रतियोगिता का हो। उद्घाटन प्रतियोगिता का प्रारम्भ होने से विकास को निश्चित रूप से गति मिलेगी। इसके लिए एक उद्घाटन मंत्रालय का गठन किया जाना चाहिये। जिसमें सारे उद्घाटनों का रिकार्ड रखा जावे। उद्घाटन मंत्रालय रिकार्ड रखेगा तो लोग जन्मदिन से लेकर दाह संस्कार तक के सोलह संस्कारो का उद्घाटन फीता काटकर या दीप जलाकर करवायेंगे। उद्घाटन के नये से नये और बेहतर से बेहतर अवसर उपलब्ध होंगे।

उद्घाटन मंत्रालय की देखरेख में उद्घाटन होते ही युद्ध स्तर पर कार्य प्रारम्भ कर दिया जावेगा। यदि ऐसा नहीं किया गया तो उद्घाटन स्वमेव निरस्त माना जावेगा। उद्घाटन के समान अवसर प्रदान करेगा।

उद्घाटन मंत्रालय की इस बहुउद्देशीय योजना के अन्तर्गत जब कोई पहली बार उद्घाटन करेगा तो नई नवेली दुल्हन की तरह शर्मायेगा। परन्तु धीरे-धीरे सब समझ जायेगा। देखेगा तो उसकी बाछें खिल जायेंगी। उसके स्वागत के लिये कैसी भव्य तैयारी की जाती है। द्वारचार से लेकर सेज तक फूल सी कोमल नजरें बिछी रहती हैं। सास-ससुर हों या साली-साले सब स्वागत को आतुर रहते हैं और फिर पति के तो कहने ही क्या है? परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता है सबकी नजरें बदलती हैं। उद्घाटन कर्ता भी अपने सद्गुणों के जौहर दिखलाते हैं। कई बार एक ही स्थान पर तीन-तीन चार-चार बार उद्घाटन होते हैं। भाषण देते हैं। मेवा खाते हैं। स्वास्थ्य बनाते हैं और चले जाते हैं। उद्घाटन मंत्रालय को पता ही नहीं लग पाया और उद्घाटन मंत्रालय का उद्घाटन हो गया। उद्घाटन मंत्रालय के उद्घाटन का चमचमाता पत्थर समय की मार से धूल धूसरित हो चुका है और कुत्ते एक टांग उठाकर समय-समय पर उसका सदुपयोग करते हैं। उद्घाटन के प्रतीक उस भूतपूर्व चमकदार पत्थर के दिल से इसकी आह निकलती है।

दिलों में रख लो निगाहों मे बसा लो मुझको।
जिंदगी हूँ मैं—किसी शक्ल में ढालो मुझको॥

□□

उद्घाटन होलिका दहन का

चेहरे पर कश्मीरी मुस्कुराहट और हृदय में धधकते हुए पंजाब को लेकर वे गले मिले पर वैसे ही जैसे ढाल से तलवार मिलती है। कहने लगे आज तो होली है। कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं, कोई दोस्त नहीं, कोई दुश्मन नहीं है। सब बराबर है। भाई भाई हैं। होली ही दुनिया में एक ऐसा त्योहार है जिसमें लोग कीचड़ उछालते हैं। मुख पर मलते हैं काला रंग तब भी मन का मैल धुल जाता है। हृदय गंगा जल की तरह पवित्र हो जाता है। होली के दिन रंग-बिरंगे चेहरों और कपड़ों के बीच काले और गोरे सभी एक से दिखलाई पड़ते हैं। "बुरा न मानो होली है" के नारों के बीच गाली को भी लोग सहज भाव से ग्रहण करते हैं। मुझे विश्वास है आपकी सदाशयता पर आप सब होली के इस शुभ अवसर पर मेरे भाषण पर अण्डे, टमाटर या जूते नहीं फेकेंगे।

अपनी रंग बदलने की कला में गिरगिट को भी मात करने वाले राजनीति के पंडित, महान कूटनीतिज्ञ, प्रकाण्ड विद्वान, मूर्धन्य लेखक, समाजसेवी, कर्मठ, जुझारू एवं अन्यान्य उपाधियों से विभूषित अखिल भारतीय स्तर पर कुख्यात मंत्री महोदय अपनी मंजी हुई मौलिक एवं बोर करने वाली शैली में अपना उद्घाटन भाषण प्रारंभ कर रहे थे। बीच-बीच में अपनी तिरछी टोपी ठीक करते थे। साथ ही बाहर की ओर निकल आये पृथ्वी के ग्लोब की तरह अपने विराट उदर पर बारम्बार हाथ फेर रहे थे। शायद उदर की कैपेसिटी देख रहे हों कि फुटबाल रूपी उदर में भाषण रूपी हवा कम तो नहीं है। पर वे हर बार पूरी तरह संतुष्ट एवं प्रसन्न दीख पड़े। उन्होंने कहा हम और हमारे देशवासी यदि प्रतिवर्ष अपने दुर्गुणों में से मात्र एक दुर्गुण को होली की लपटों में भस्म करें तो भारत में वह दिन दूर नहीं जब राम राज्य की स्थापना का स्वप्न साकार हो उठेगा।

यदि हम अपने संकल्प को दृढ़ता के साथ पूर्ण करें तो गांधी जी की इच्छा के अनुसार हर गरीब की आंख का आंसू पोंछा जा सकेगा। छोटे से लेकर बड़े सभी घरों में बच्चे महिलाएं और बुजुर्ग सभी सुख की गहरी नींद सो सकेंगे। मजदूरों के लिये गिरते हुए जीवन स्तर एवं समाज के नैतिक पतन के लिए उन्होंने शरीर के उपयोग को दोषी ठहराया। शराब की बुराइयों का गहराई से उल्लेख करते हुए उसकी आहुति होली में देने की पुरजोर कोशिश जन सामान्य के बीच कर रहे थे। जिस समय मंत्री महोदय जन मानस का आह्वान कर रहे थे कि शराब को त्याग दें उसी समय उनकी श्वांस के साथ एक तेज गंध वातावरण को दूषित कर रही थी। साथ ही उनके चेहरे पर अंगूर की बेटी अपना प्रभाव दिखला रही थी।

अपने कर्तव्य एवं सिद्धांत के प्रतीक अटूट निष्ठा रखने का निर्देश देते हुए महामानव गांधी, लौह पुरुष पटेल, योगी विवेकानन्द एवं न जाने कितनों का उदाहरण उन्होंने दिया। कठिनाइयों का सामना करते हुए उनके समान ही आगे बढ़ते रहने का प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का अनुरोध आम सभा से किया। उन्होंने अभी-अभी दल बदला था। अपने दल बदल को समयानुसार निरूपित करते हुए देश की प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक बतलाकर स्वयं के द्वारा उठाये गये कदमों के पक्ष में असंख्य तर्कहीन प्रमाण प्रस्तुत किए।

उन्होंने आगे कहा कि सत्य एवं त्याग की राह पर चलकर ही व्यक्ति छोटे एवं गरीब परिवारों में जन्म लेकर भी उच्च पद प्राप्त करता है। कुछ लोग वंदनीय भी हो चुके हैं। इब्राहिम लिंकन, लाल बहादुर शास्त्री, रामकृष्ण परमहंस, मुकर्ण, अम्बेडकर आदि का नाम बिजली की तेजी से उन्होंने गिनाया। अपने ज्ञान की पराकाष्ठा पर स्वयं ही गर्वित होकर विशाल जन समूह के चारों ओर अपनी दृष्टि घुमाने लगे। परन्तु आदत से मजबूर आँखें मंच के पास खड़ी हुई दो सुन्दरी युवतियों, मृगनियों पर कुछ सेकण्ड के लिए अटक ही गई। उन्हें शीघ्र ही परिस्थितियों की गहनता एवं अपने स्थान की उच्चता का स्मरण हो आया। उन्होंने तुरंत ही स्वयं

को संयमित किया और पुनः भाषण की उल्टी सीधी बोछार करने लगे। चमचों ने भाषण समाप्त करने का इशारा किया पर वे चोट खा चुके थे अतः गाड़ी फिर चलने लगी।

खूबसूरती की चोट से घायल सर्प की तरह फुफकारते हुए नेता जी चरित्र की दुहाई देने लगे। घाव ताजा था। विषय अभी-अभी प्राप्त हुआ था देश में भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, नैतिक मूल्य गिर रहे हैं कहते हुए सफल अभिनेता की तरह चेहरे पर विषाद के बादल गहराने लगे। चरित्र की तरह ईमानदारी और सत्य के पथ पर चलने की अपील करते हुए कोठियों, इम्पाला एवं बिस्कुटों के मालिक बन बैठे भूतपूर्व दरिद्र नारायण (मंत्री जी) पर अब जनता जनार्दन की ओर से फुसफुसाहट के फूलों की वर्षा होने लगी थी चमचों ने बदलती हवा को पहचाना एवं उन्हे भाषण समाप्त करने का संकेत दिया पर गाड़ी चलती रही।

होलिका दहन का मुहुर्त निकला जा रहा था पर मंत्री महोदय अपनी भाषण कला की धाक उन समस्त पत्रकार, डॉक्टर, वकील, नेता, व्यापारी एवं पुजारी पर बैठा देना चाहते हैं जो होलिका दहन में अपनी बची हुई अच्छाइयों की आहुति देने आये थे। उनसे कहने लगे होली हृदय का उल्लास है। निष्कपट प्रेम और भाईचारे की प्रतीक है। देवर भाभी की ठिठोली है। साम्प्रदायिक सद्भाव का वातावरण बनाती है। अतः होली केवल हिन्दुओं का नहीं वरन सिक्ख, मुसलमान और ईसाई भाइयो को भी बहुत प्रिय है। होलिका दहन वास्तव में असत्य पर सत्य की और अन्याय पर न्याय की विजय का पर्व है। होलिका दहन पर बुराइयों को जलाने का उद्घाटन उन्होंने चुनाव में हारे हुए अपने प्रमुख प्रतिद्वंदी को पहले गुलाल लगाकर और बाद में गले लगाकर किया। वे गले उनसे जरूर मिले पर वैसे ही जैसे ढाल से तलवार मिलती है। उन्होंने जाते-जाते फिर फरमाया—

बिना मारे बैरी मरे, ठाढ़ो ईख बिकाय।
होली के दिन मां, या सुख कामे समाय॥

□□

ट्रम्पकार्ड और जोकर

एक जमाना था जब ट्रम्पकार्ड और जोकर की भूमिका केवल ताश के खेलों में होती थी। धीरे-धीरे "जोकरों" ने सरकस को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया और अब तो दुनिया के बड़े-बड़े कूटनीतिज्ञ और पटुकुट-नीतिज्ञ भी इनके महत्व को स्वीकारने लगे हैं। "खेल-खेल में रेल/रेल चली भई रेल" को स्वर लहरियों के बीच छोटे-छोटे बच्चे एक दूसरे के पीछे-पीछे रेल की तरह छुक-छुक, छुक-छुक की आवाज निकाल रहे हैं। बीच-बीच में मुंह से इंजन की सीटी भी दे रहे हैं। नन्हे-नन्हें बच्चों की तरह कर्मठ राजनेताओं की रेल भी दौड़ रही है। मारपीट, लड़ाई, झगड़े और आपसी खींचातानी के लिए यह एक आदर्श स्थान है। यह अपने पूरी फार्म पर दीख पड़ती है। उनकी भाई चारे की भावना। पुजारी जब आरती के बाद पहचान पहचानकर प्रसाद बांटता है तब वे एक दूसरे को टांग खींचने की प्रतियोगिता शुरू करते हैं। भावना यही रहती है, हम तो डूबेंगे सनम तुझे भी लेकर डूबेंगे। खरों पर भारत की दयनीय स्थिति पर धुरंधर वक्ताओं ने खूब कहा है एक वयोवृद्ध नेता जी की बात दिमागी खोपड़ी में गुदगुदी कर रही है बात ऐसी थी—"भारत एक गरीब देश है, यहां फुटबाल से २०-२५ खिलाड़ी खेलते हैं। मैं इस बात का प्रयास करूँगा कि भारत में प्रत्येक फुटबाल खिलाड़ी के पास स्वयं का फुटबाल हो और यह अकेला फुटबाल खेल सके।" अपने अनोखे भाषण में खेल-खेल में ऐसा कहकर वे शान से अपनी गर्दन अकड़ा लेते हैं मानों उन्होंने कोई महत्वपूर्ण बात कहकर जगे मैदान मार लिया हो।

राजनीति में खेल और खेल में राजनीति आने-जाने लगी है। इनमें रोटी-बेटी का लेनदेन लगा है। इनका साथ चोली दामन के साथ हो गया है। एक के बिना दूसरी अधूरी है। अनेकों बार खिलाड़ी (चाहे मैदान का

हो या राजनैनिक अखाड़े का) कमजोरी को धोखेधड़ी और दबाव की दुहाई देकर छुपाना चाहते हैं। आड़े, तिरछे, ऊँचे, नीचे वक्तव्य दे देते हैं। कई बार स्थिति यह रहती है "नाच न जाने आंगन टेढ़ा।" सच तो यह है कि दुनिया में जितनी भी खेल प्रतियोगिताएँ होती हो। चाहे वह एशियाड हो चाहे विम्बलडन हो सब खेलों को चुनावी प्रतियोगिता की धार मात करती है। इस धार के सामने प्राचीन तलवार की धार हो या आधुनिक ब्लेड की धार दोनों भोथरी प्रतीत होती है। वैज्ञानिक प्रगति की रफ्तार और राजनीति के खेल की रफ्तार दोनों में किसकी रफ्तार अधिक है तय करना कठिन है। कहा भी गया है—

कभी मुसोलिनी तो कभी हिलटर की हुंकार
तो कभी गांधी की अहिंसक पुकार
राजनीति का खेल
कभी हिरोशिमा-नागासाकी का बम्बार्ड
तो कभी
कांग्रेस, जनता और भाजपा का घिसा हुआ ग्रामोफोन रिकार्ड
हो गई यह ५२ पत्तों में ट्रम्पकार्ड

समय की बलिहारी है अब इन खेलों से भी आदमी का शारीरिक और मानसिक विकास होता है। खेलों में ही धीरे-धीरे नेतृत्व की क्षमता का विकास होता है। सचमुच खिलाड़ी अनुशासनप्रिय हो जाता है। ऐसे ही अनुशासन को पुष्पित व पल्लवित करने की परम्परा डाली जा रही थी। अनुशासन इस तरह भी उछाला गया था "आपात् स्थिति अनुशासन अर्थ है। अनुशासन पर एक व्यंग्यकार की अभिव्यक्ति का उल्लेख इस संदर्भ में जरूरी लग रहा है—हमने जूते वाले से पूछा / यह पाँव में काटता तो नहीं है? यह बोला, हुजूर यह जूता है / बीसवीं सदी का आदमी नहीं है / कि आपको काटेगा / यह तो आपातकालीन मंत्रियों की तरह / आपके चरण चाटेगा। कवि तो कह गये सो कह गये। चारों ओर दिखलाई भी यही पड़ता है। ट्रम्पकार्ड और जोकर का खेल अब केवल ताश तथा घर के कमरों तक

ही सीमित नहीं रह गया है। उसने घर आँगन को पार करके "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना को अपनाया है। हर घर में, हर माहौल में, हर चुनावी नेता के यहाँ अपना डेरा जमाया है। ताश के ५२ पत्तों की जगह जोकर जौहर दिखाने लगे हैं ५४४ बरगदी पत्तों के बीच। यह बरगदी पत्ते प्रत्येक पाँच साल में झड़ जाते हैं और इनमें नयी कोपलें फूटती हैं। कभी-कभी इनका खेल २६६ और ३२० पत्तों का भी होता है। अकबर जिस तरह जीवित मोहरों से मन बहलाता था। आजकल के नकली महाराजा इन जोकरों से मन बहलाते हैं जो असली होते हैं। समय-समय पर इनका उपयोग करके बाजी जीत जाते हैं। कभी-कभी जब ट्रम्पकार्ड की "शह" को जोकर अचानक भूत की तरह प्रगट होकर "मात" से बदल देता है तो वे निराश अपने साथियों को कुछ इस तरह कोसते हुए पाए जाते हैं—

जमाने में अजी ऐसे कई नादान होते हैं।
वहीं ले जाते हैं कश्ती जहाँ तूफान होते हैं॥



चलन से बाहर

जब के शहनाई के स्वर हमारे कानों में रस घोलते हैं, हम मीठी, गुदगुदाती स्मृतियों के ज्वार भाटे में डूबते / उतराते हैं। 'वे भी क्या दिन थे'—की तर्ज में मोंदूराम भी अपनी काबलियत के झंडे गाड़ने लगता है। लोग सुनकर भी अनसुना करते हैं। कन्नी काटते हैं। मोंदूराम सब समझता है परन्तु अपना मोंदू पुराण वह चालू रखता है। इस गति से कि शहनाई के स्वरों की गूंज मार्ग में रोड़ा न बन सके। किसी तरह मोंदूराम जी से पिंड छुड़ाकर हम शहनाई बजने वाले घर की चौखट लांघते हैं, तो वहाँ उल्लासभरी खिल-खिलाहटों के बीच खनकती चूड़ियों के साथ दुल्हन का चाँद सा मुखड़ा दिखाई पड़ता है। लाल साड़ी में लिपटी काली कलूटी दुल्हन की बलैया "सास" सौ-सौ बार लेती नहीं थकती। बहू के गुणों के पुल बाँधती हुई नहीं अघाती। जमकर दहेज लाने वाली बहू को साक्षात लक्ष्मी का अवतार बतलाती है। परन्तु धीरे-धीरे खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। कुछ महीने और साल के बीतते-बीतते लक्ष्मी साक्षात रणचंडिके नजर आती है सास को। गृहयुद्ध की रणभेरी शीतयुद्ध की तरह समानान्तर बजने लगती है। कभी बहू सास को तो कभी सास बहू को—खोटे सिक्के की तरह समझती है। वाकयुद्ध में नित नये सुभाषितों का अविष्कार होता है।

समय पाकर सास या बहू दोनों में से किसी एक को चलन से बाहर होना पड़ता अर्थात् बहू बुरी होती है तो सास को घर से बाहर निकलना पड़ता है। और सास बुरी होती है, तो बहू को घर से बाहर निकलना पड़ता है। इस प्रक्रिया को अर्थशास्त्रीय "ग्रेशम का नियम" कहते हैं। ये महत्वपूर्ण नियम अर्थशास्त्र में निम्न प्रकार प्रतिपादित हुआ है—"बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देती है।" जायदाद का बँटवारा होता

है भाई-भाई के बीच। यही नियम अपनी सार्वभौमिकता सिद्ध करता है। झगड़ता भाई बुरी मुद्रा का रूप धारण कर अच्छी मुद्रा की अपने सीधे-साधे भाई को घर से बाहर कर देता है।

राजनीति खुली पुस्तक है। अपने कारनामों से प्रसिद्धि के शिखर पर भी है। रीतिकालीन कवि कहा करते थे—सुंदरी का रूप वर्णन करते हुए कि खुदा ने बहुत फुरसत में गढ़ा है उनकी नायिका को। आजकल लोग कहते हैं—नेताओं को भगवान ने फुरसत लेकर बनाया है। राजनीति में सब कुछ जायज मानने वाले ये नेता भी ग्रेशम के नियम को प्रमाणित रूप में प्रस्तुत करते हैं। जो सही में देशभक्त रहता है, सेवा और त्याग में ही जो अपना जीवन व्यतीत करता है—वह ताम्रपत्र का अधिकारी होता है अथवा स्वतंत्रता सेनानी का बिल्ला लगाकर ही गौरवान्वित होता है। और अच्छी मुद्रा की तरह राजनीति के चलन से बाहर हो जाता है। जबकि बुरी मुद्रा की तरह राजनीति में वे चलते हैं वे पूजे जाते हैं जो साम, दाम, दण्ड भेद और स्वार्थ में दक्ष होते हैं।

फिल्मी दुनिया में उद्देश्यपूर्ण और कलात्मक फिल्मों के हश्र से आप परिचित हैं। बाक्स आफिस पर वे फिल्में सफल होती हैं जो पूरी तरह व्यावसायिक होती हैं। बुरी मुद्रा की तरह अपनी भूमिका से वे अच्छी मुद्रा (अच्छी फिल्म) को चलने से बाहर कर देती हैं। पालक अपने बच्चों को प्रारम्भ से ही आचारवान बनाने की कोशिश करते हैं, पर वे आचारहीन बनकर मुंह चिढ़ाते हैं। सदा सच बोलने की शिक्षा प्राप्त करते-करते वे झूठ बोलने में निष्णात हो जाते हैं। जितने भी सद्गुणों के बीज बालकों में अंकुरित होते हैं, ये व्यावसायिक फिल्में दुर्गुणों के आधार पर उन्हें चलन से बाहर कर देती हैं।

पुस्तकों के बाजार में तो ग्रेशिम का नियम का वर्चस्व है। सस्ती अश्लील और चुटकुले बाजी से ओतप्रोत हल्की-फुल्की पुस्तकों से बाजार भरा पड़ा है। उनकी माँग भी है। वे बिकती भी हैं। साहित्य में मापदण्ड को स्थापित करने वाले साहित्यकारों की पुस्तकें लायब्रेरी में बंद रहती हैं।

भूले भटके लोग उसके दर्शन करते हैं। साहित्यिक गुटबंदी में भी उखाड़-पछाड़ चलती रहती है। आरोप, प्रत्यारोप होते है। कोई पीठ थपथपाता है, तो कोई सामने गड्ढा खोदने को तैयार खड़ा रहता है। खंडन होता है। फिर मंडन की योजनाएं बनती हैं। कभी-कभी पुस्तकों के बाजार में अच्छी मुद्रा की तरह अच्छी पुस्तकें भी दिखलायी पड़ती हैं। कवि सम्मेलन के मंच पर कभी-कभी अच्छे कवि भी नजर आते है। परन्तु जिस तरह बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को अधिक समय तक चलने नहीं देती, उसी प्रकार बुरी पुस्तकें अच्छी पुस्तकों को बाजार के चलने से बाहर कर देती हैं और वे पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाती हैं। चालू चाय की तरह बुरी मुद्रा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल होती है। इठलाते हुए कहती है।

पंछी बनू उड़ती फिरूँ मस्त गगन में।
आज नया जादू हूँ, दुनिया के चमन में॥



हाय री किस्मत दगा दे जाती है . .

विधायक, सेण्डिल और युवा शब्द मल्टीपरपज हैं। ढेर सारे उद्देश्य होते हैं। इन शब्दों के। सुपर बाजार में जिस तरह बहुउद्देशीय कंपनियाँ कंठच्छेदी प्रतियोगिता में लगातार कूदती जा रही हैं, उसी प्रकार कहीं विधायक, तो कहीं युवकों के तेवर, तो कहीं सेंडिलें अपना रुतबा अपना दबदबा सिद्ध करने के लिए बेकरार हैं। और जब विधायक, सेण्डिल और युवा इन तीन रेखाओं के माध्यम से त्रिभुज बनता है, तो वह त्रिभुज "लाल त्रिकोण" को भी मात कर देता है। सेण्डिल की यह खासियत है कि आप उसका प्रयोग इच्छानुसार कर सकते हैं। कहीं कोई बाध्यता नहीं है। आप चाहे तो उसे नंगे पैर में पहने और चाहें तो मोजे के साथ। फीते को एड़ी में कसकर बूट की तरह भी पहन सकते हैं और सामने की तरफ मोड़कर चप्पल की तरह भी पहन सकते हैं। जिस तरह प्रजातंत्र में सभी टोपीधारी, काली टोपी वाले को या सफेद टोपी वाले, नीली टोपी वाले हों या हरी टोपी वाले, पीली टोपी वाले हो या लाल-लाल टोपी वाले—समाजवादी और लोकतंत्र शब्दों का इच्छानुसार प्रयोग करते हैं। उसी तरह सड़क पर दादागिरी से लेकर चरणरज रक्षक के रूप में आप सेण्डिल का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं।

भारतीय प्रजातंत्र में ही नहीं संपूर्ण विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष के बाद युवकों ने अपने जलवे दिखाए हैं। "युवा" उत्साह, लगन, सक्रियता और कर्मठता के प्रतीक माने जाते हैं। बहुत पहले मध्यप्रदेश की विधान-सभा में भी कुछ तत्कालीन युवा विधायकों ने सेंडिल और जूते के साथ अपना रागात्मक संबंध स्थापित किया था। "देर ना लगाना—अंधेर न मचाना, स्याति मेरी झोली में छम से चले आना" के तर्ज पर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर विधानसभा में फूलों की तरह सेण्डिल उछाल दी

थी। कहते हैं, स्वतंत्रता का जो अधिकार है प्रजातंत्र में—इसी प्रकार बहुत से युवा और अनेक विधायक भी भूतपूर्व विधायकों के पदचिन्हों का अनुसरण करने को आतुर दिखायी देते हैं।

इसी प्रकार की एक घटना है। धूम्रकेतु की तरह राजनीति में एक युवा नक्षत्र का उदय हुआ था! हेलीकाप्टर पर बैठते हुए उनकी चप्पले पैरों से फिसलकर गिर पड़ी। फिसलना स्वभाव होता है दोनों का। तब एक मंत्री जी ने दौड़कर चप्पल उठाई। केवट ने चरण धोये थे। राजाराम को उसी परम्परा का निर्वाह करते हुए उन्होंने चप्पल उस नक्षत्र के चरण कमलों में पहना दी।

प्राचीन काल में लंगोटी पहनने वाले साधू भी खड़ाऊ पहनते थे। सूर्यवंशीय राजा रामचन्द्र के चौदहवर्षीय वनवास जाने पर भी भरत ने राम की खड़ाऊ के माध्यम से राज्य चलाया था। युग के अनुरूप नाम बदले हैं। खड़ाऊ का स्थान अब सेन्डिल ने ले लिया है। राजतंत्र का स्थान प्रजातंत्र ने परन्तु गुणवत्ता में बहुत फर्क नहीं आया है। खड़ाऊ की उपयोगिता और उसका वजन "भरत" ने सेवक होकर भी सिद्ध कर दी थी। इसलिए बहुत से विधायक सेन्डिल पहनते हैं। सेन्डिल के कारण सुर्खियों में रहते हैं।

राजनांद गाँव में हमारे एक मित्र हैं। रुचि सम्पन्नता और मुस्कुराती हुई हाजिर जवाबी में भी उनका कोई जवाब नहीं। एक बार भोपाल-दुर्ग की यात्रा में उनके साथ विधायक भी थे और स्वाभाविक है सेन्डिलें भी। बस चर्चा चल निकली। अनेक कोणों से युवा, विधायक और सेन्डिल शब्दों की व्याख्या होने लगी। सुदर्शना नारी के बदले उन्होंने नन्ही सी डिबिया की तारीफ में पुल बाँध दिए। डिबिया में थी लौंग, इलायची और सुपारी।

चर्चा यूँ होने लगी। कुछ विधायक ऐसे होते हैं। खड़े होते हैं। खड़े तो लौंग और बैठते हैं तो इलायची की तरह नजर आते है और कुछ सुपारी की तरह. ठोस होते हैं। जो विधायक लौंग, इलायची और सुपारी सहित

कत्थे चूने का अच्छा सामंजस्य बैठा लेते हैं, ये मीठा पान बन जाते है। पान की दूकान में "मीठा पान" राजा होता है और विधायकों के बीच में मुख्यमंत्री। राजा बनने के बाद सेन्डिल की आवश्यकता नहीं रह जाती। राजा का बड़प्पन नंगे पैर दौड़ने में दिखलाई पड़ता है। वैसे ही जैसे राजा कृष्ण अपने बाल सखा सुदामा से मिलने नंगे पैर दौड़ पड़े थे। अतः जब तक विधायक हैं, चमकती सेंडिलों को निरंतर चमकाना जरूरी मानते हैं राजा बनने का स्वप्न देखने वाले। और सेंडिल चमकाते भी रहते हैं।

चमकती सेंडिलों के कारण युवा विधायकों की पूछ मुख्यमंत्री के पास भी बढ़ जाती है। इसीलिए कुछ विधायक प्रमुख द्वार तक सेंडिल को दुशाले में लपेटकर ले जाते हैं। ताकि वह धूल और गर्द से बची रहे। ऐसे चमकती रहे कि चेहरा देखा जा सके। दरबान के पास मुख्यद्वार पर पहुँचते ही विधायक मंत्री बनने की चाह में कायाकल्प करते हैं अपना। पहनी हुई चप्पल झोले में और दुशाले में लिपटी हुई सेन्डिलें पैरों में चमकती हैं तथा दुशाला कंधे पर सज जाता है। विधायक से चमचे कहते हैं—सचमुच आपके चरण कमल सेन्डिल के कारण खिल उठे हैं और मुख कमल की कांति में दुशाले ने चार चांद लगा दिए हैं। आपकी यह ओजपूर्ण तेजस्वी मुद्रा पूरी तरह मंत्री पद के योग्य है। हुजूर, भीतर पधारें। मंत्री पद आपके स्वागत के लिए दुल्हन की तरह आतुर है। करबद्ध खड़ा मंद मंद मुस्कुरा रहा है। युवा विधायक का भीतर प्रवेश। परन्तु हाय री किस्मत बार बार दगा दे जाती है चौबेजी छब्बे जी बनने जाते हैं और दुबेजी बनकर लौट आते है। फिर भी युवा विधायक गीता में कृष्ण के इस उपदेश को हृदय में धारण कर निरंतर प्रयासरत हैं। सेन्डिलें चमका रहे है, शायद भाग्य भी चमके :

कर्मणयेवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फल हेतु भूमो ते संगोण्स्त्वकर्मणि॥

□□

आई बसंत बहार

अरी ओ धनिया। अरे ओ होरी। अब तो चेतो भाई। देखो तो, खोलो आंखें। कब तक सोते रहोगे? अब तो जागो। देखो, गौर से देखो कौन आया है? बसंत आया है बसंत। चिलचिलाती धूप के दिनों भी बसंत आया है। कभी देखा है तुमने अपने जीवन में बसंत। नहीं देखा न। अब देखो जी भर कर देखो। धनिया तुम भी केवल सुना करती थी और होरी से झगड़ा करती थी 'बसंत आता है तुम मुझको बताते तक नहीं।' होरी अब तुम धनिया को बताओ। बसंत आया है तुम लोगों के लिए खुशबूदार गुलदस्ता लेकर आया है। तुम अब आम से खास हो गये हो न। तुम्हारी जरुरत अब समझने लगे हैं लोग। इसलिये तुम्हारा स्वागत करने बसंत आया है। तुम्हें सजाने-संवारने की दिली इच्छा हाथ में लिए हुए कहता है, "भूल जाओ पुराने दुर्दिनों को, उनकी याद में आंखों के दरिया कब तक बहाते रहोगे" देखो मैं आ गया हूं। मैंने सारे सड़े-गले पत्तों को झड़ा दिया है। दीमक लगे बट वृक्ष अपने आप धराशायी हो रहे हैं। जर्जरित हुए पेड़ों को भी मैंने तुम लोगों की खातिर उखाड़ फेंका है। नई-नई कोपलों से भरा पूरा संसार लेकर आया हूं। कहता है बसंत। अभी सफाई अभियान चालू है। जो भी कूड़ा करकट बच गया है उसे भी सफा कर दूंगा। चमचमाते पत्तों पर आपका स्वागत है अपना चेहरा देखिए। मुस्कुराइए और दूसरों को मुस्कुराने दीजिए। कोपलों का स्वागत कीजिए। आपके दिन फिर आयेंगे। कहता है बसंत।

आप तो जानते ही हैं। विज्ञ पाठक हैं। हिन्दी में तरुणाई का ही दूसरा नाम बसंत है। सफलता उम्र को किसी भी मोड़ पर आये। चमन और चेहरे खिलने लगते हैं। गर्मी हो या सर्दी सफलता ही बसंती बयार का सुख देती है। खिलखिलाते हैं वे बात बात पर। तरुणाई मादक खुशबू से

सारा गुलशन महकने लगता है । स्वागत है इस बसंती बहार का । खुशी की बात है बसंत में संकट से लोहा लेने की क्षमता है । निराशा और विफलता के स्थान पर सफलता का सेवर लगातार लगाती जा रही है । परन्तु चार दिन की चटक चाँदनी न हो जाये यह बसन्ती बहार ।

ऋतुराज की जितनी भी तारीफ की जाय कम है । ऋतुराज ने इस बार सबका ध्यान रखा है । फिल्मी दुनिया से भी नृत्यांगना, अभिनेत्री, अभिनेता और निर्देशक लेकर आया है । जरूरत है एक प्ले बैक सिंगर की और शूटिंग शुरू क्योंकि प्रोड्यूसर तो यहाँ बहुत हैं । लोक सभा में चुनकर पहुँचे हुए इन फिल्मी कलाकारों ने अच्छे-अच्छे महारथियों को दिन में तारे दिखा दिये हैं । ये फिल्मी दुनिया वाले परदे पर तो अपना जौहर (एक्टिंग के माध्यम से) दिखाते ही रहे हैं । इस बार इन्होंने मैदाने जंग में भी इनको पीट दिया है । जन-जन के अभिनेता अब जन-जन के चहेते नेता हो गये हैं । क्यों न हो आखिर बसन्त आया है ।

गाथा उनके पराक्रम की दिक् दिगन्तों तक में गूंजने लगी है । युवकों की कर्मठता, उनके उल्लास, उनकी क्षमता का प्रतीक बनकर बसन्त आया है । अंतर्राष्ट्रीय युवा वर्ष में युवा प्रधानमंत्री का तेज गति में लिपटा संतुलन उनसे सप्रेम भेंट करने आया था । शालीनता की कसौटी पर खरे उतरते हुए शांति और सहयोग से उत्थान का संदेश लेकर आया है । इसलिए इस वर्ष को हम "शांति वर्ष" के रूप में मना रहे हैं । आखिर क्यों न हो इस बार सचमुच बसन्त आया है । असम और पंजाब समस्या का समाधान लेकर आया है । विपक्ष के सम्मान की बात भी होने लगी है । मीठी चासनी में डूबी जलेबी की तरह सब के सब आश्वासनों की मीठास से लबालब भर गये हैं । कल्याणकारी घोषणाओं की निरंतरता बनी हुई है । बसन्त तो न जाने कब का बीत गया । अब तो झुलसा देने वाली गर्मी आई है । फिर भी वह हमें बसन्त की बहार की तरह लगती है क्योंकि यह गर्मी सूखाग्रस्त क्षेत्रों में हरितक्रांति का संदेश लेकर आई है । अब हमें अकाल का सामना नहीं करना पड़ेगा । कानों के पास से गुजरती गरम-गरम लू के झोंके

इसका संदेश दे रहे हैं। इसीलिए सब कह रहे हैं आई बसन्त बहार। जो थक गये हैं उन्होंने आशा का दामन नहीं छोड़ा है। क्यों छोड़े आखिरकार उनके जीवन में पहली बार बसन्त आया है। अभी-अभी आप सिखते हैं आपा-धापी से, दौड़-धूप से, धक्का-मुक्की से, चीख-चिल्लाहट और नारों की गूँज से आपने प्रयोग किया है अपने अधिकारों का। पुनः सुहानी बेला आ रही है पैरों में महुर और हाथों में मेहदी लगाये दुल्हन की तरह मुस्कुराती। भविष्य के गर्भ में काँटों का ताज छिपाये। फिर भी छुटभैयों की बन आयी है। सब उचक रहे हैं। छोटे से लेकर बड़े सभी "दे दाता के नाम पर" भोपाल और दिल्ली में खड़े हुए हैं। जोड़-तोड़ बैठा रहे हैं सुनिये ध्यान से सुनिये—

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना।
तुम ही चुप हो गये दास्तां कहते कहते॥

□□

आया ये मौसम प्यार का

ऋतुएँ बदलती हैं। ऋतुओं के साथ-साथ मौसम भी बदलता है। आदमी तो अवसर रूप बदलने लगा है। बाहर से कुछ और भीतर से कुछ और रहता है। हाथी के दाँत की तरह आदमी का व्यक्तित्व। लेकिन यह आम आदमी का व्यक्तित्व नहीं है। खासमखास इन्सान का है। ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न व्यक्ति मौसम के अनुसार ही सामने आते हैं। ईद के चाँद की तरह कभी-कभी दिखाई देते हैं। ऐसे दुर्लभ रत्नों का मौसम अब फिर आ गया है। नियमानुसार अपने-अपने मौसम में सभी प्यार देते हैं। स्वागत करते हैं। सम्मान करते हैं। अभिनन्दन करते हैं। कहते हैं न "समय पड़ा बाँका तो गधे को कहो काका", यह भी मौसम की बलिहारी है। जब जब पहली तारीख आती है तब तब मौसम पत्नी के प्यार उँडेलने का और आपका प्यार पाने का मौसम होता है। नौकरीपेशा पति जब घर लौटते हैं तब तुनक मिजाज और पूरे महीने भर उदास रहने वाली, मुरझायी बेल की तरह पत्नी को भी पहली तारीख को खिली हुई देखकर पतिदेव गदगद हो जाते हैं। चिड़िया की तरह फुदकने की कोशिश में भारी भरकम भैंस भी उस दिन स्वप्न सुंदरी बनने के लिए जी जान से जुट जाती है। साठोत्तरी कविता की तरह बिना साज श्रृंगार के ही वह लुभाने का प्रयास करती है और सफल भी होती है। इस पहली तारीख का साप्ताहिक कार्यक्रम अपने पूरे ओर शोर से व्यापारियों के यहाँ भी दीख पड़ता है। डंडे के बल पर वसूली होती है और मुद्रा रूपी लक्ष्मी का स्वागत करने घर की लक्ष्मी सदा तैयार खड़ी रहती है। यहाँ भी मौसम भरपूर प्यार का होता है। हाँ बदलते युग और बदलते परिवेश में ये पत्नियाँ माथे पर तिलक लगाकर आरती नहीं उतारतीं परन्तु उनकी भावना करीब-करीब वैसी ही होती है। पहली तारीख में स्वागत और सम्मान रण जीतने की खुशी से भर देता है। सबको एक साथ।

रक्षाबंधन भाई-बहन के प्यार का मौसम होता है बहन राखी बांधती है। मुँह मीठा कराती है तिलक लगाती है। नारियल भेंट करती है। भाई, बहन को प्रेमोपहार में साड़ी भेंट करता है या मनुहार करती बहन को अपनी सीमाओं में मुँहमांगा वरदान देता है। रक्षाबंधन के इस पर्व को एक विशेष वर्ग ने "येनबद्धो बली राजा...." के इकलौते मन्त्रोच्चारण के साथ धंधे के रूप में अपना लिया है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है मौसम देखकर कि रक्षाबंधन का सही स्वरूप धुंधला पड़ता जा रहा है। कच्चे धागों में पगा हुआ भाई-बहन के स्नेहिल प्रेम प्रतीक को इस्पात की सी मजबूती प्रदान करने वाला यह पर्व अपनी मूल भावना से हटकर पार्श्व गायकों की तरह पर्दे के पीछे आ चुका है और सामने खड़ी है राखी बांधकर रकम ऐंठने वालों की जमात। अब राखियां धीरे-धीरे उनके धंधे की प्रतीक होती जा रही हैं। इसी प्रकार पुनः मौसम आया है टोपी वालों का पुनः प्यार जताने का। नारेबाजी का। वाहवाही लूटने का। द्वारे द्वारे घूमने का हाथ जोड़ने का। जमकर अभिनय करने का।

कभी-कभी आकाश में अचानक बेमौसम भी बादल छा जाते हैं और गरजते हैं भरपूर। भारतीय कृषक का मनमयूर अच्छी वर्षा की संभावना से नाच उठता है। बिजली भी कड़कती है। बादल बार-बार गरजते हैं। गरज के साथ कुछ छींटे भी पड़ते हैं। सब भ्रम में पड़ जाते हैं। उम्मीद की वर्षा नहीं हो पाती। बादल गरजकर चले जाते हैं क्योंकि ये बादल केवल गरजने वाले होते हैं, कभी बरसते नहीं बस गरज-गरजकर धोखा देते हैं। सब भ्रम में पड़ जाते हैं। ये केवल अपनी महत्ता सिद्ध करने आते हैं। आकाश में जमे रहना चाहते हैं। जमीन से गले मिलने की ललक नहीं होती इनमें। केवल नाटक करते हैं धरती को हरी-भरी करने का।

हवा कुछ ऐसी बह चली है कि बसंत ने अपनी सुहानी छटा के प्रभाव से वातावरण को खुशियों से झूमते पेड़ों को उत्साह और उमंग से भर दिया है लबालब। चारों ओर हरियाली छाई है। इन्द्रधनुषी आकाश में पता ही नहीं चलता कि हवा इतरा रही है या पौधे। पर सब के सब झूम रहे हैं।

चूहे फुदकने लगे हैं। पुनः मूसको भव की स्मृति को विस्मृत कर चूहे अपने आपको सचमुच का शेर समझ रहे हैं। ठोकर खाकर भी आँखें खुल नहीं पाई हैं। सबकी अपनी-अपनी ढपली है। अपना-अपना राग है बेसुरा। उन्हें नहीं मालूम ज्यादा शेखी बघारी तो जनता जनार्दन पुनः मूसको भव की स्थिति में पहुँचा सकती है। हालत यह हो गई है कि कौवों को यह गुमान कि वे कोयल से अच्छा गाने लगे हैं। कवि के शब्दों में—हजारों जगमगाते / बल्बों के बीच / कतार में लगे एक फ्यूज बल्ब को भी / यह गलतफहमी / उसके ही आलोक से / यह शुभ विवाह सम्पन्न हुआ है।

होली सबके बीच प्यार लुटाने का मौसम होता है। शादी-विवाह के अवसरों पर "सड़ोनो" गाने में कोई बुरा नहीं मानता बल्कि सभी रस लेते हैं उन गालियों में। इसी प्रकार होली में भी देवर-भाभी की ठिठोली और जीजा-साली के प्यार में छलकती बोली सबके कानों में रस घोलती है। "होली है कोई बुरा न माने" कहकर लोग कुछ भी बोल रहे हैं और बुरा मानकर भी बुरा मानने वाले बुरा नहीं मान रहे हैं। क्योंकि आया है मौसम प्यार का। आया था मौसम वोट माँगने का। परंतु जिनकी टिकट कट चुकी है उनके पास कोई चारा नहीं है सिवा सिर धुनने के। हां उनको इस मौके पर वाणी कबीर की याद करना जरूरी हो गया है—

माटी कहे, कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय।
इक दिन ऐसा आयेगा, मैं रौंदूगी तोय॥

□□

आप आए बाहर आई

भारत एक अमीर देश है जहाँ गरीब रहते हैं। इस कथन की सत्यता लगातार प्रमाणित होती जा रही है। मँहगाई और आबादी के सारे पुराने रेकार्ड ध्वस्त होते जा रहे हैं। नया सूरज, नयी रोशनी में नये रेकार्ड कायम करने में अपनी समूची ताकत न्योछावर कर रहा है। इसलिये भारत में अमीरी खूब बढ़ी है। प्रगति चतुर्दिक है। सोपान नये-नये हैं। इसलिये अमीरी के साथ-साथ गरीबी भी खूब बढ़ी है। विकास भी खूब हुये हैं। अवमूल्यन भी। सभी प्रगति के पथ पर दौड़ रहे हैं। निरंतर इक्कीसवीं सदी की ओर।

चर्चाओं के दौर में एक नेता से घिरे—चमचे तरह-तरह से अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। इसी बीच मंत्री न बन पाने का गुस्सा नेताजी ने इस प्रकार व्यक्त किया। मंत्री बनना आजकल बिल्कुल बेकार है। मंत्री जनता से कट जाता है। सच यह है कि जितनी तीव्रगति से देश में रुपये का अवमूल्यन हुआ है, उससे अधिक अवमूल्यन मंत्री शब्द का हुआ है। पहले थोड़े से मंत्री होते थे। कभी-कभी दौरा करते थे। पर अब तो आए दिन कोई न कोई मंत्री रेस्ट हाउस मे जमा रहता है। ख्याति सारी की सारी जो गुब्बारे की तरह फूली थी, पंचर हो चुकी है। फिर भी वे आते हैं और आते रहेंगे। हम स्वागत करते हैं और करते रहेंगे।

जब भी छोटे या बड़े मंत्री, मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री आते है, अधिकारी चौकन्ने हो जाते हैं। दीपावली आने के पूर्व जिस तरह व्यापारी अपने घरों में रंग रोगन करता है, दुकानें एक बार फिर से चमकाता है—उसी प्रकार जिधर से भी मंत्री महोदय को गुजरना होता है, उधर लीपापोती के माध्यम से सब कुछ पेंट कर दिया जाता है। लम्बे-लम्बे

कीचड़ भरे रास्तों का डामरीकरण किया जाता है। चमगीदड़ भगाने के लिये हजारों रुपये का लोहबान जला दिया जाता है।

इतना सब होने पर भी जनता जनार्दन खुश इसलिये नहीं होती कि मंत्रीजी आ रहे हैं। आकर इधर से गुजर जायेंगे परन्तु उनका दुख-सुख सुनने की फुरसत उन्हें नहीं है। आम आदमी भी जानने-समझने लगा है इनके वादे कोरे वादे होते हैं। जो सिखाए पूत होते हैं, वे कभी-कभी ही घोड़े पर चढ़ पाते हैं। हाँ—आश्वासन की चासनी कानों में रस जरूर घोलती है। फिर भी इनका आना बुरा नहीं लगता। सड़कों के गड्ढे भर दिये जाते हैं। जीर्णोद्धार की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। और कभी महामहिम या प्रधानमंत्री जी के चरण रज पड़ने की संभावना होती है तब तो भागमभाग का नजारा देखते ही बनता है।

उन क्षेत्रों, रास्तों और गाँवों का कायाकल्प हो जाता है जिधर से उनकी सवारी को गुजरना है। नये-नये बिजली के खंभे गाड़े जाते है। सब कुछ चकाचक हो जाता है। 'बहारों फूल बरसाओ—मेरा महबूब आया है' के तर्ज पर स्वागत, अभिनन्दन की तैयारी और अखबारों में एक-एक पृष्ठ में बड़े-बड़े विज्ञापन सुलभ दर्शनीय हो जाते हैं। लगता है क्षेत्र की जनता से लेकर राजनैतिक नेता और अधिकारी सब के सब जागरुक और कर्तव्यनिष्ठ हैं। सबकी कर्मठता के फलस्वरूप बसंत अपने समूचे उल्लास के साथ गुनगुनाता हुआ नजर आता है।'

कवायद का असर होना जरूरी है। मेहनत दो-चार दिनों में ही फलने लगती है। रातों-रात फौज लगाकर गाँव वालों का उद्धार किया जाता है। उनकी तकलीफें सुनी जाती हैं। फिर दूर करने के प्रारम्भिक प्रयास भी होते हैं जिन गाँवो में महामारी के समय भी डाक्टरों के दर्शन दुर्लभ रहे। उन गाँव वालों को अपने जीवन में पहली बार डाक्टरों और नर्सों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दवाइयों के ढेर को देखकर तो वे आश्चर्यचकित रह जाते हैं। जिन स्कूलों में गुरुजी गायब रहते थे, वहाँ गुरुजी के साथ-साथ साफ-सुथरी टाट-पट्टियाँ और ब्लैक बोर्ड

भी सजा-धजा कर उपस्थित कर दिये जाते हैं। नये-नये स्कूल खोल दिये जाते हैं। गाँवों में पोस्ट आफिस के बोर्ड भी लटका दिये जाते हैं। रातों-रात वृक्षारोपण हो जाता है। पर्यावरण में तेजी से सुधार होने लगता है।

यही राजनीति का जादू है
आदिवासी भी कहते हैं
यही जादू नगरी का खेल है
मजदूर और उद्योगपति
दोनों एक साथ कहते हैं—
यही जादूगर का कमाल है
व्यापारी भी खुश हैं वे भी कहते हैं
यह वाटर आफ इंडिया है
डिसकवरी आफ इंडिया है

स्टेप अप में ऋण पाने वाले बेरोजगार भी कहते हैं, "आप आए बहार आई....।" युवा पीढ़ी के हृदय सम्राट अपनी सफलता पर फूले नहीं समाते। ऐसी ही खूबसूरत, मुस्कानों और स्थितियों पर शायर की ये दो पंक्तियाँ कही गई हैं—

सच्चाई छुप नहीं सकती बनावट के उसूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥

□□

हीरो अमरता की ओर

गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को दिशानिर्देश देते हुये पूरे आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—आत्मा अजर-अमर है। न उसे कोई जिला सकता है, न भिगो सकता है और न काट सकता है। इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ते इस भौतिक युग में यह कथन सोचने-समझने के अनेक आयाम छोड़ता है।

कृष्ण आगे कहते हैं—मैं सर्वशक्तिमान हूं। तुम तो निमित्त मात्र हो। कर्म कर फल की चिंता मत कर। महाभारत के महारथी भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा भी जानते थे जहां कृष्ण है वहां विजय होगी। आज चांद पर कदम रखने वाले वैज्ञानिक भी इस अमरता के रहस्य को नहीं जान सके, लेकिन भारतीय फिल्म उद्योग के बड़े-बड़े कर्णधार प्रोड्यूसरों और डायरेक्टरों ने अमरता के इस रहस्य को पा लिया है। अपनी-अपनी कथा में यह कर्णधार फिल्मी हीरो के जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव को चटपटे ढंग से परोसने की कला में सिद्ध हो चुके हैं। वे जानते हैं जिस तरह आत्मा अजर-अमर है—जहां कृष्ण है वहीं विजय है—उसी तरह जहां भारतीय फिल्म का हीरो है वहीं विजय है। *आत्मा की तरह ही भारतीय फिल्म का हीरो भी अजर-अमर है।*

ये कर्णधार बताते हैं—नैपोलियन ने कभी कहा था 'असफलता' शब्द मेरे शब्दकोष में नहीं है। भारतीय फिल्म का हीरो पूरी तरह नैपोलियन के कथन पर अपने पदचिह्न रखता हुआ हमारे सामने आता है। फिल्मी परदे पर हम देखते हैं—सभी गुण कांचन हीरो नामक उछलते-कूदते प्राणी में नजर आते हैं।

भारतीय फिल्म का हीरो—सर्वगुण-सम्पन्न और सुदर्शन तो होता ही है, वह सर्वशक्तिमान भी होता है। किसी भी फिल्म में देखिये उसको चाहने वालों की भीड़ होती है। *परन्तु जिस हीरोइन पर उसका दिल*

आ जाता है, उस हीरोइन के चाहनेवाले भी जरूर होते हैं। उसका अपहरण गुंडे करते है। एक गैंग के सरगना के सामने या तो हीरोइन को बांधा जाता है या उसे नाचने के लिए बाध्य किया जाता है। कुछ गुंडे फिल्म के हीरो को लाकर बाँध देते हैं। लेकिन फिल्म के अंत होने से पहले हीरो कोई न कोई तरकीब लड़ाकर अपने बंधन काट लेता है और ढेर सारे गुण्डों की पिटाई करता है। उसके कुछ साथी भी इस समय पहुँच जाते हैं। खलनायक हीरोइन को लेकर भागता है और हीरो उसका पीछा करता है। खलनायक कार या घोड़े पर हीरोइन के साथ भागता है और हीरो पहाड़ की पगडंडियों पर दौड़ता है उसके पीछे। फिर भी वह कार के ऊपर पहाड़ के किसी उपरी हिस्से से कूद जाता है। फिर मारा-मारी होती है। खलनायक उसे धक्का देता है और हीरो कार के नीचे लटक जाता है। सड़क पर कई किलो मीटर कार के पीछे घिसटता है परन्तु उसे खरोंच भी नहीं आती। हीरो अजर, अमर जो है। पुनः कार पर चढ़कर खलनायक की पिटाई करता है। कार रुक जाती है। जब हीरो, खलनायक को जान से मारना चाहता है तो पुलिस आ जाती है। हीरो को हीरोइन मिलती है। इनाम मिलता है चूँकि वह सर्वशक्तिमान सिद्ध होता है।

कभी-कभी जब खलनायक हीरोइन को उठाकर ले जाते हैं और जब भी वे हीरोइन की इज्जत लूटने का प्रयास करते हैं बिल्कुल देवदूत की तरह अवतरित होकर हीरो अपनी हीरोइन की रक्षा करता है। ऐन मौके पर पहुँचने में उसे कभी देर नहीं होती क्योंकि वह अंतरयामी होता है। कई बार जब हीरो तस्करी समाप्त करने का बीड़ा उठाता है तो वह सी० आई० डी० के पुलिस के बड़े अधिकारी के रूप में परदे पर आता है। भारतीय फिल्म का यह हीरो कार एवं ट्रक से लेकर हेली-काप्टर तक सफलतापूर्वक चला सकता है। कई बार तो वह कार उछालकर नदी पार कर लेता है। जंगल का क्षेत्र हो तो घुड़सवारी द्वारा अपराधियों का पीछा करता है। यदि महानगर हो तो १०-१० मंजिल के भवनों मे छलांग लगाते हुए बढ़ता है। कभी उससे चूक नहीं होती। सफलता हमेशा उसके चरणरज चूमती है। कभी-कभी दुनिया भर के

छटे हुए और प्रसिद्ध अपराधी उसे घेर लेते हैं। वह निहत्था रहता है। अपराधियों के पास अस्त्र-शस्त्र रहते हैं परन्तु फिर भी वह एक लोहे की छड़ से ही सबको धराशायी करने में सफल होता है क्योंकि वह आत्मा की तरह अजर-अमर है।

जब कभी भारतीय फिल्म का कोई नायक कालेज में पढ़ने वाला छात्र होता है, तो वह पढ़ाई में सबसे तेज रहते हुए गोल्ड मेडल पाता है। यूनिवर्सिटी लेबल का खिलाड़ी भी होता है। क्रिकेट में लगातार सेन्चुरी मारकर गावस्कर को भी मात करता है। कालेज के स्नेह सम्मेलन में तो उसकी प्रतिभा में चार चाँद लग जाते हैं। कालेज के लड़के-लड़कियाँ जब पिकनिक मनाने जाते हैं तो वहाँ वह कभी माउथ आर्गन तो कभी बाँसुरी बजाकर उनका मनोरंजन करता है। डिस्को डान्स भी करता है। भारतीय फिल्म में यह जरूरी है कि वहाँ किसी न किसी माध्यम से कालेज की सबसे खूबसूरत लड़की उस पर मोहित होती है। वहाँ भी कालेज के कुछ बदमाश लड़के उसे छेड़ते हैं। आप जानते ही हैं, उन सबकी पिटाई करना भारतीय हीरो का जन्मसिद्ध अधिकार है। इस घटना के बाद धीरे-धीरे हीरो-हीरोइन का प्रेम परवान चढ़ता है।

भारतीय फिल्म का हीरो अपने डायलॉग और कारनमे द्वारा हृदय परिवर्तन की भी शक्ति रखता है। कई बड़े-बड़े अपराधी उससे प्रभावित होकर आत्मसमर्पण करने को तैयार हो जाते हैं। यदि फिल्म में हीरो गरीब है और हीरोइन करोड़पति बाप की बेटी है, तो प्रारंभ में निश्चित रूप से हीरोइन का बाप उनके प्रेम का विरोध करता है। वह पैसे से हीरो का प्रेम खरीदना चाहता है। परन्तु असफल हो जाता है। धीरे-धीरे फिल्म के अन्त तक गरीब हीरो के सद्‌गुणों से बहुत प्रसन्न हो जाता है। अपनी गलती मानकर हीरो को सहर्ष अपना दामाद बनाना स्वीकार करता है। कुल मिलाकर भारतीय फिल्म का हीरो अद्‌भुत होता है। लेकिन फिल्मी दुनिया के ये कर्णधार नहीं जानते और हीरो भी नहीं जानता :

> वो अपने डँसने को खुद पाल रहा है विषधर।
> बड़ा अजीब सँपेरा है क्या किया जावे। □□

बोल–राधा–बोल

स्पीकर से चारों ओर पंडे चिल्ला रहे हैं। इधर आइए आइए। माता जी पधारिए। सस्ता और विश्वसनीय। देर बिल्कुल नही लगेगी सीधे स्वर्ग की गारंटी। पेपर बैक की तरह एकदम किफायती संस्करण निकाला है सुविधा के लिए। पंडे बारंबार गला फाड़ रहे हैं। गला बैठा है फिर भी रुक नही रहा।

पापी पेट का सवाल है। इसलिए दिन और रात चलो भाइयो चलो। माताओं और बहनों आओ। देखो फिर बारह वर्ष तक सुनहरा मौका हाथ नही लगेगा। आओ और बटोर लो ढेर सारा पुण्य। इस सदी का यह है। कुंभ का मतलब आप जानते ही हैं। गंगा स्नान और इस लोक के साथ-साथ परलोक भी सुधारना। दानी भी पीछे छोड़ देते है। दोनों हाथ से उलीचते हैं लक्ष्मी। और सरस्वती के संगम का है। पर भागते हैं, सब संगम होता है यहाँ लक्ष्मीपुत्रों का। कहते हैं न बारह बरस के बाद घूरे के दिन भी फिर जाते हैं। वैसे ही कुंभ दर कुंभ होते हैं—और ठीक बारह बरस बाद सट्टे की डबल जोड़ी की तरह है चतुर्दिक संगम ही संगम। बचपन से ही संगम की महिमा उसकी गौरवगाथा सुनता आ रहा हूँ। सभी बड़े-बूढ़ों ने, नानी ने, दादी ने संगम की महत्ता गाई। नाना प्रकार की कहानियों मे। मेरा बालक मन मधुर लगाकर संगम देखने के लिए छटपटाता रहता था। इसी समय राजकपूर की फिल्म 'संगम' देखने का सुयोग आया तो तीर्थराज प्रयाग का संगम देखने को मन बेताब बेचैन रहता। वर्षों बाद संगम स्नान की दीर्घकालीन मनोकामना पूर्ण हुई और संगम का चमत्कार देखा। गंगा-यमुना के साथ संगम तो नहीं देख पाया। बताया गया सरस्वती अदृश्य है। वहाँ दूसरे संगम देखे। आइए आप भी देखिए। मेरे साथ :—

ठंड की गुलाबी दुल्हन ने—सुबह-सुबह जैसे ही अपना घूंघट खोला हमारी स्पेशल बस नदी के पास आ खड़ी हुई। उतरकर देखा। जिस

ओर नजर जाती उस ओर छत्ते की तरह आदमी ही आदमी दिखाई पड़ने लगे। एक-एक कर हाथ में लोटा लिए दिशा मैदान की खोज। ऐसा लगा उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की खोज बिना बर्फ के हुई है। परन्तु न मिलना था अतः नहीं मिली साफ-सुथरी जमीन। किनारे दूर-दूर तक गू की अनन्त ढेरियाँ अपने विभिन्न रूपों में इठला रही थीं। आमंत्रित कर रही थीं आप भी आइए। कैसे इस अद्भुत बाजार में इक्कीसवीं सदी में जाने का पसंद प्रबुद्ध मानव समूह सब कुछ भूल चुका था। थोड़ी-थोड़ी दूर में कभी न समाप्त होने वाले इस महायज्ञ में सभी अपना योगदान दे रहे थे। छोटी-छोटी बासी ठेरियों को पैरों से रौंदते हुए घृणा से मन भर जाता था। पुनः याद आती संगम की। मुक्ति की आकांक्षा लिए मन को कड़ा करके मैं आगे बढ़ गया। यह था संगम से मेरा पहला साक्षात्कार। सचमुच यहाँ ब्रह्म एकाकार हो जाता है। स्नान के पश्चात मंदिर जाते हुए मंदिर के भीतर गूगल और अगरबत्तियों के साथ गन्दी नाली के बदबू का संगम। मंदिर के दोनों ओर कतारबद्ध कोढ़ियों, अपाहिजों, भिखारियों और कामगारों के साथ गले में कैमरा लटकाये विदेशियों का संगम। विदेशी भी खूब आते हैं। रिपोंताज लिखते हैं। फिल्में बनाते हैं और वाहवाही लूटते हैं। यहाँ देखिये आप कृष्ण और सुदामा का मिलन नये अंदाज में। मंदिर के आसपास गोदान द्वारा स्वर्ग की टिकिट का रिजर्वेशन होता है। इक्कीस रुपये दीजिये और रिजर्वेशन पाइए। देखिए वहाँ पाखंडी मुस्टंडों का संगम। नंग-धड़ंग फकीर और थ्री पीस सूट में कार से उतरने वाले शहंशाह का संगम।

विशाल भीड़ भरे मेले में दुकानों पर एक-एक क्विंटल उबले आलुओं का ढेर और उस पर लगी हल्दी का संगम। नवपल्लवित कोपलों की तरह कोमल किशोरियों के साथ-साथ आम के मौरों की तरी यौवन भार से लदी रमणियों और ठूँठ की तरह सूखी कुबड़ी वृद्धाओं का संगम पूरे मेले में तैर रहा था। इनके आस-पास भी घूम रहा था परोपकारी के पुण्य और भ्रष्टाचारी के पाप का संगम।

वहाँ आपस मे कुछ लोग चर्चा कर रहे थे। कोई कह रहा था कि मिट्टी के घड़े को कुम्भ कहते हैं। कोई कह रहा था गंगा स्नान को ही कुम्भ कहते हैं। पंडों द्वारा लुटा गया एक ग्रामीण बेचारा बोल रहा था—भाई लूट-खसोट का ही दूसरा नाम कुम्भ है। यहाँ मंदिरों मे प्रसाद बिकता है। भगवान के दर्शन के लिए भी घूस देना पड़ता है। एक नेतानुमा आदमी बोल रहा था। सरकारी कार्यालयों में आफीसरों की जिस तरह काकागिरी चलती है उससे बढ़कर दादागिरी कुम्भ पर्व में पंडों की रहती है। एक नेताजी धार्मिक पुस्तकों की दुकान का उद्घाटन करते हुए कह रहे थे। भारत धर्मप्राण देश है। कुम्भ हमारी धार्मिक परंपरा का उज्जवल प्रतीक है। कुम्भ का अर्थ है दीन-दुखियों की सेवा करना। हमारी पार्टी दीन-दुखियों के साथ हरिजन, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों की सेवा के लिये दृढ़ संकल्प ले चुकी है। गंगा सब की माँ है।... मेरा किशोर मन चुपके से मुसकुराता है—बोल राधा बोल-संगम होगा कि नहीं ? इधर नेताजी का भाषण चल रहा है और उधर इम्पोर्टेड कार से उतरते हुए अपने पुराने जजमानों को देखकर एक वृद्ध का सूटधारी नौजवान बेटा गुनगुनाने लगता है—

हम तुम्हें चाहते हैं ऐसे।
मरने वाला कोई जिंदगी चाहता हो जैसे।

□□

रेत पर चाँद को तस्वीर बनाने वाले

कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं होती परन्तु वी० आई० पी० की दुम दो रूपों में सामने नजर आती है। कभी दुधारू गाय की तरह सीधी तो कभी मरकहे साँड़ की तरह टेढ़ी। समय का फेर है जब जैसा रूप वे दिखा दें। दुम की विशेषता के आधार पर ही वी० आई० पी० का भूगोल पढ़ा जाता है और फिर कोरे कागज पर चाँदा एवं त्रिभुज का प्रयोग कर सूत्र सिद्ध होते हैं।

वी० आई० पी० ट्रीटमेंट मिलते ही आदमी, आदमी नहीं रह जाता। सीधे परलोक में पहुँच जाता है। कल्पनालोक की लम्बी उड़ान में स्वयं-भू बनकर इतराने लगता है। अपनी गणना विश्व की महानतम विभूतियों में करके प्रसन्न होता है। फिर भी संतोष नहीं होता। शेख-चिल्ली की भाँति वह घड़े पर लात नहीं जमाता तब तक उसे होश नहीं आता। ऐसी हरकतें करने लगता है कि बच्चे भी तालियाँ बजाकर हँसते हैं। महिलायें भी उसे अपनी जिह्वा के केन्द्र में ले जाती हैं। बुजुर्ग कहते हैं—"दिमाग चढ़ गया है ससुरे का।" कोई कहता है—"पगला गया है", तो कोई "चर्बी चढ़ गई है साले की।" आदि अनेक आख्यान और कहावतों का जन्म होता है। परन्तु सामने पड़ते ही सब के सब हाथ में फूलों की माला लिए दंतनिपोरी करते खड़े हो जाते हैं। कोई रोकने-टोकने वाला नहीं होता। सब जी हुजूरी करते हैं। लगातार वाहवाही से घिर कर वी० आई० पी० का दिमाग कुंद होने लगता है।

कुछ लोग बेचारे कुछ भी नहीं होते। जानते हैं वे अपने जीवन में कभी वी० आई० पी० नहीं बन पायेंगे। वे वी० आई० पी० सूटकेश खरीद कर ही अपनी आत्मा को शांति प्रदान करते हैं। पत्नी का मन बहलाते हैं। अपने नन्हें आवास गृह में प्रत्येक आंगतुक को चमचमाते वी० आई० पी० का दर्शन जरूर कराते हैं। बताते हैं। वह ऐसा वैसा नहीं है। वह भी वी० आई० पी० ब्रीफकेश रखता है। वैसे आज-कल

वी० आई० पी० ब्रीफकेश का स्थान मिनी टी० वी० ने लिया है। टी० वी० आज के समाज का यथार्थ बन गया है। वही ड्राइंग रूम की शोभा है। परन्तु यात्रा करते समय वी० आई० पी० ब्रीफकेश के शान ही निराली होती है। बार-बार उसे खोलना और बन्द करना। ब्रीफकेश की गुणवत्ता का बखान करते हुये, सहयात्री की ज्ञानवृद्धि करते हुए अपने को छोटा-मोटा वी० आई० पी० सिद्ध करना उनकी चारित्रिक विशेषता बन जाता है।

व्यक्ति वी० आई० पी० न हो तब भी अपने आपको सिद्ध करने के लिए अनेक सूत्रों का उपयोग करता है। क्योंकि यह माँग और पूर्ति के लिये नियम के अनुसार युग की धड़कन है। अपने आपको वी० आई० पी० सिद्ध करना एक फैशन है।

पहले सूत्र के अनुसार गम्भीरता का चोला वैसे ही ओढ़ लेता है जैसे गदहे ने राजा बनने की सोचकर शेर की खाल ओढ़ ली थी। उच्छृंखल व्यक्ति जब घोर, वीर, गम्भीर बनता है तब ऐन मौके पर ओढ़ी हुई गम्भीरता गधे की आवाज की तरह धोखा दे देती है। हाँ, जब तक वह गधे की तरह चीपों चो...पों नहीं करता वी० आई० पी० के नाटक में अपना रोल सफलतापूर्वक अभिनीत करता है।

सूत्र नम्बर दो के अनुसार पारिवारिक उत्सवों में, मरनी-धरनी में, पूजा में, विवाह उत्सव में और विभिन्न डिनर पार्टियों में कभी भी समय पर न पहुँचाना। विलम्ब इतना अधिक करें की आयोजक पुनः पधारे। फिर भी चकमे पे चकमा। कभी सिरदर्द तो कभी विस्मृति की आड़ लेकर उससे हँसते हुए विनम्र क्षमा-याचना और वी० आई० पी० की औकात सिद्ध कर देना।

कुछ लोग इससे भी दूर की कोड़ी लाते हैं। जब कभी दूर गाँव या अपने शहर में कोई सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक या साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित हो, पहले जुगाड़ फिट करना। मुख्य अतिथि के लिये जब आयोजक प्रस्ताव लेकर आये तो नई नवेलियों की तरह नखरे

करना । फिर भी 'मन भावे मूड़ हिलावे' के सिद्धांत के अनुसार स्वीकृति देकर ऐन मौके पर खिसक जाना ।

इंतजार की तो बात ही अलबेली है । जब कोई भेंट हेतु पहुँचे तो तब भीतर से चन्द्रमुखी की तरह मुस्कुराते हुए आना जब वह जाने लगे, यदि भूल से वे बैठक में ही विराजमान है तो बैठे-बैठे ही मुस्कुराकर उनका स्वागत करना । फिर न्यूज पेपर पढ़ने में मग्न हो जाना । जब आगन्तुक लौटकर जाने लगे तो बैठे-बैठे ही उन्हें विदा कर देना ।

यह सब अपने आपको वी० आई० पी० सिद्ध करने की कला के नमूने हैं और भी बहुत से कलात्मक क्रिया-कलाप हैं ।

को मूँछ के तेवर दिखाकर अपनी कला पेश करता है । तो कोई पहलवानी का दाँव दिखाकर वी० आई० पी० बनता है । बहुत से लोग टोपी पहनकर अपने करतब दिखाते हैं । कोई लाल टोपी पहनता है तो कोई नीली-पीली । किसी को काली टोपी पसन्द है तो किसीको सफेद टोपी । कुछ लोग हरी टोपी पहनकर हरीतिमा और शांति का सन्देश देते हैं । कुछ लोग टोपी का रंग मौसम के अनुसार बदल लेते है । वी० आई० पी० लम्बी फौज में ऐसी ही विशेष दुम के लिए किसी शायर ने कहा है—

क्या मिलेगा तुझे बिखरे हुए ख्वाबों के सिवा ।
रेत पर चाँद की तस्वीर बनाने वाले ।

□□

पद यात्रा

मदारी का जमूरा जैसे दर्शकों को रिझाने के लिए नये-नये करतब दिखाता है। हँसाता है। वैसे ही जब जब चुनावी बादल आकाश पर मँडराने लगते हैं नेता भी नये-नये करतब दिखाते हैं। आश्वासनों की बिजली चमकाते हैं। जनता को रिझाने के लिए। कुर्सी पाने के लिए। करतबों में नया करतब बना है इस बार "पद यात्रा" और पद यात्रा के बहाने जन-सम्पर्क। जनसम्पर्क के बहाने मस्का लगाना। फिर चुनाव का आना। और फिर वोट का पाना और फिर कुर्सी को हथियाना। वैसे चरम पद की प्राप्ति के लिए स्वयं के "पदो" का सदुपयोग भारत की एक प्राचीन परंपरा है। जो बनती-बिगड़ती रही है। इतिहास साक्षी है कि पद यात्रा के तपस्वियों ने अनेक राजमुकुटों को धूल में मिलाया है। अनेक राजसिंहासन के सरताजों को नंगे पांव जमीन पर चलने को बाध्य किया है। ऐसा कहा जाता है कि निःसंतान अकबर ने मीलों बिलबिलाती धूप में नंगे पांव चलकर फकीर औलिया की दरगाह से दुआ के बहाने सलीम को मांगा था।

पद यात्रा के इतिहास की खोज खबर लेते हुए पद यात्रा के महत्व को हिमालय की ऊँचाइयों तक पहुँचाने वाला एक और पुराना किस्सा जेहन में कुलबुला रहा है। किस्सा यों है कि किसी जमाने में वर्षों से एक बीमार आदमी था। तत्कालीन राज रोग तपेदिक का। सौभाग्य से सम्पन्न था। परन्तु उसका दुर्भाग्य वह अपनी सम्पन्नता को तपेदिक के कारण नहीं भोग रहा था। उसके हृदय में कमचील की फांस की तरह गहरे फँसकर यह रोग उसे रात-दिन बेचैन किये रहता था। सैकड़ों वैद्य, गुनिया, तांत्रिक सभी ने इलाज किया, परन्तु उसे वे तपेदिक से छुटकारा न दिला सके। कारण था हरदम पसरे रहना। दिन-रात जुगाली करना और कोढ़िया बैल की तरह मेहनत से जी चुराना। वे चटोरे सज्जन किसी के भी निर्देशों को

अमल में नहीं लाते थे। फलस्वरूप यह कहावत सच उतर रही थी उनको कंचन सी काया पर—"ज्यों ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता ही गया।"

एक बार गांव की सीमा में एक सिद्ध योगी पहुँचे। रोगी ने उनके चरणों में दण्डवत प्रणाम किया और अपनी व्यथा कही। योगी जी बोले, वत्स! एक वर्ष की पद यात्रा पर अकेले निकल जाओ। निम्न दो बातों का कड़ाई से पालन करना। पहली, एक गांव में एक रात रुकना। दूसरी, जिस गांव में रुको वहां एक बार भीख मांग कर खाना। एक वर्ष बाद जब वापस आओगे तपेदिक से मुक्त हो जाओगे। सचमुच एक वर्ष बाद वह ठीक हो गया। कारण उस जमाने में गांव बहुत दूर-दूर होते थे। अतः ८-१० कोस प्रतिदिन चलना पड़ता था इस प्रकार अधिक मेहनत और रूखा-सूखा व कम खाना इन दोनों बातों के संयोग ने उसका रोग दूर कर दिया। उसी समय से पद यात्रा का महत्व बढ़ा और चरैवेति-चरैवेति का मूल मंत्र बहुत लोकप्रिय हुआ।

राजतंत्रीय व्यवस्था में राजा, महाराजा और नवाब भी कभी-कभी पद यात्राएं करते थे क्योंकि वे पद यात्रा के महत्व को समझते थे। रथ, घोड़े और सजे-धजे हाथियों की सवारी में जब वे निकलते थे तो राज्य में चारों ओर उन्हें अमन चैन ही दिख पड़ता था। तत्कालीन समाज में जनता के सुख-दुख को अपने वजीरों की, मंत्रियों की और सलाहकारों की फौज द्वारा नहीं जान पाते थे। अपनी गुप्तचर व्यवस्था पर उन्हें पूरा भरोसा था फिर भी वे "पद यात्रा" के महत्व को समझते थे। राज्य में चल रही आन्तरिक गतिविधियों की जानकारी के लिए वे वेश बदल कर यात्राएँ करते थे। पद यात्रा द्वारा अपनी पकड़ मजबूत रखते थे अपने राज्य पर। फिर आजकल तो प्रजातंत्र है। हमेश-हमेशा न सही कभी-कभी तो अपने महत्व को पुनः प्रतिपादित कराने के लिए पद यात्रा का फैशन चल पड़ा है। पद यात्रा के इस दौर में जाने-अनजाने सभी सम्मिलित हो गये हैं।

जैन सम्प्रदाय के मुनियों ने भी पद यात्रा को बहुत महत्ता प्रदान की है। चतुर्मास के विशेष अवसरों को छोड़कर वे अपना सारा जीवन सत्संग

और धर्म प्रसार के लिए समर्पित करते है। वह प्रसार वे पद यात्रा द्वारा ही करते है। जैन साधु एवं साध्वी सभी पद यात्रा पर निकलते है। एक शहर से दूसरे शहर, सांसारिक राग-विराग से दूर होकर इन सन्यासियों की पद यात्रा के दौरान गाँव की या शहर की सीमा तक सांसारिक मोह माया के जाल में डूबे इनके अनुयायी श्रद्धालु भक्त रास्ता बुहारते (साफ करते) चलते है। ताकि इनके नंगे पैरों को पद यात्रा के दौरान कोई कष्ट न हो।

बीसवी सदी के आधुनिक इतिहास में पद यात्रा के सबसे बड़े पक्षधर विनोबा भावे रहे हैं। "जैसी कथनी वैसी करनी" के अनुरूप ही उन्होंने पद यात्रा का संकल्प लेने के बाद आजीवन पद यात्रा ही की। कभी अपवाद स्वरूप मजबूरी में स्वास्थ्य गिर जाने के कारण "कार यात्रा" भी कर ली। अन्यथा वे पद यात्रा के सच्चे समर्थक थे। मनसा वाचा कर्मणा। बड़े-बड़े ओलम्पिक और एशियाड हो गये। परन्तु पद यात्रा उनके रिकार्ड को विश्व में कोई छू भी नहीं सका। क्योंकि बेचारे आयोजक भी वैसी कोई पद यात्रा को प्रतियोगिता रखने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। हाँ "ऐसा माना जाता है कि विनोबा भावे पद यात्रा के विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर, गाँव-गाँव भूदान के उद्देश्य से भूमिपतियों के हृदय परिवर्तन के लिए करते थे। परन्तु समय के साथ शब्दों के महत्व भी बदल जाते हैं। उद्देश्य भी बदल जाते हैं। यही हाल पद यात्रा के साथ हुआ है। हमारे एक कवि साथी हैं मुकुन्द कौशल, उन्होंने वर्तमान संदर्भ में पद यात्रा के अर्थ और महत्व को नये ढङ्ग से, नये रूप से परिभाषित कर सही अर्थ प्रदान किया है। एक नयी परिभाषा गढ़ी है पद यात्रा की—पद के लिए / पद के द्वारा / जो यात्रा की जाती है / वह पद यात्रा कहलाती है। "आज परिस्थितियों के दबाव में युग के सत्य को प्रतिबिंबित करती है।" उनकी यह परिभाषा। कहते हैं महत्वकांक्षा जब उछाल मारती है तो सारे घेरे छोटे हो जाते हैं। स्वार्थ जब अपना सर ऊँचा उठाता है तब सारी मर्यादाओं को तोड़कर आदमी अपने करतब दिखाने लगता है। सरकस के

जोकर की तरह अनोखी हरकतें करता है। उसका उद्देश्य जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना हो जाता है। इन नवीन संदर्भों में सब के सब धनुर्धारी अर्जुन के नक्शे पर चल पड़े हैं। जिस प्रकार अर्जुन को लक्ष्य भेद के समय केवल चिड़िया की आँख दिखलायी पड़ रही थी उसी प्रकार इन्हें केवल कुर्सी दिख रही है। अर्जुन ने धनुष-बाण के बदले हैं पद यात्रा, पद यात्रा और लक्ष्य है कुर्सी।

साम्राज्य न सही एक कुर्सी ही मिल जाय तो इनकी मनोकामना पूर्ण हो जायेगी। और जिन्हे मिल चुकी है कुर्सी, वे चाहते हैं बरकरार रहे परम्परा कुर्सी की आने वाली पीढ़ियों के लिए भी। राजा रामचन्द्र ने भी १४ वर्ष सपत्नीक पद यात्रा रामराज्य के स्थायित्व के लिए ही की थी। इसलिए बीसवी सदी के आधुनिक राम भी पद यात्रा करने में जी जान से जुड़ गये है। हालांकि उनकी स्थिति वन के मार्ग पर वनवास जाती हुई सीता की तरह हो जाती है। तुलसी के शब्दो में—

पुर ते निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनीं जल की, पुट सुखि गये मधुराधर वै॥

पर क्या करें बेचारे मजबूर हैं। युग की माँग के अनुरूप अचारण करना ही पड़ता है। अभी फैशन चला है इस पद यात्रा का। लगता है बस यही एक रास्ता रह गया है। सड़क के संसद तक जाने का। धान के कटोरे से विधान सभा के झरोखे तक पहुँचने का दिल्ली और भोपाल में पाँच साल के लिए मिल जाय हवाखोरी करने का पास। इसलिए कर रहे हैं धुंआधार पद यात्रा सब के सब।

कुछ समय की पुरानी बात है एक दाढ़ी वाले महारथी ने सम्पूर्ण आर्यावर्त नाप लिया पैरो से। कश्मीर की बर्फीली चोटियो से हिन्द महासागर की गोद मे कन्याकुमारी तक पद यात्रा कर डाली। कुन्दन की तरह चमकने लगी उनकी छवि। सभी को चारों खाने चित्त कर दिया। झण्डा गाड़ दिया ऊँचा। विनोबा के बाद वाली लिस्ट में चमकने लगे। ताल ठोंक दी। है कोई माई का लाल। मन ही मन मुस्कुराने लगे। सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति उनसे

मिलने जाने लगे। और वे चैन की बंशी बजाने लगे। सबसे बड़ी कुर्सी पाने के ख्वाब सजाने लगे। भारत तो ऐसे महारथियों और दिग्गजों का गढ़ रहा है। भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू का निधन हुआ था तब किसी ने कहा था, "माना कि हमने एक लाल खो दिया है परन्तु भारत माँ की गोद में लालों की कमी नहीं है।" भारत तो माई के लालों का देश है। महारथी की इस चुनौती को यहाँ के कण-कण में फैले "लाल" सर के ऊपर से कैसे जाने देते। स्वीकार किया उन्होंने और करने लगे यात्रा। अरे नहीं भाई—पद यात्रा। डंके की चोट पर अपनी-अपनी औकात देखकर।

जिनके मन में दिल्ली का दरबार देखने की चाहत ने अँगड़ाई ली उन्होंने बना दी सड़क अपने घर से राष्ट्रपति भवन तक। वहाँ पहुँच हो गयी। कछुए की चाल से। पद यात्रा के भव्य तुलसी और मौसंबी के रस पीते हुए, ताजे फल खाते हुए गुलाबी से लाल होते हुए। स्वागत हुआ भरपूर। होना ही था। बधाई मिली। फ्लैश चमके हरी झंडी और आश्वासन दोनों मिल गया आने वाले समय के लिए। भविष्य सुरक्षित हो गया। पद यात्रा के इन दावेदारों में कुछ लौटे हवाई जहाज से तो कुछ लौटे रेलगाड़ी से।

कुछ लोगों ने मुनियों, त्यागियों और तपस्वियों की सांस्कृतिक परंपरा को ध्यान में रखा रामराज्य और भारतीय संस्कृति की दुहाई देते हुए। जंगल, पहाड़ और नदी की ओर बढ़ चले। पद यात्रा प्रारंभ हुई। उपेक्षित और तिरस्कृत आदिवासी हरिजन, आदिम जाति एवं जन जाति के स्थायी निवासों के दुर्गम क्षेत्रों को अपने इस महायज्ञ (पद यात्रा) का लक्ष्य बनाया। कहने लगे द्वार-द्वार जाकर अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। तुम्हारे अच्छे दिन आ गये है। हम लोग जाग गये है। अब घर-घर जाकर सबकी समस्याएँ सुनेंगे। (कोई मसखरा बीच में ही चुहल करता है, भाई अभी ये केवल समस्याओं को सुनेंगे फिर पाँच साल बाद आयेंगे तो उन्हे हल करने पर विचार करेंगे। और फिर पाँच साल बाद आयेंगे तो हल करने की दिशा में कारगर कदम उठायेंगे।)

बड़े-बड़े महारथियों ने जब पद यात्रा कर डाली तो छुटभैये क्यों पीछे रहते उनका तो मूल मंत्र है—महाजनो येन गतः...। वे भी चल पड़े हैं अपने अगुवा महारथियों की राह पर। पद के लिए पद यात्रा की राह पर। सभी अपने-अपने क्षेत्र में साप्ताहिक पद यात्रा का आयोजन कर रहे हैं। कुछ एक दिवसीय पद यात्रा में अपना योगदान देकर ढोल पीट रहे हैं। नित-नयी योजनाओं और करिश्मों के इस देश में अवसरवादी अब पद यात्रा का मोह छोड़ कर करने लगे हैं शीर्षासन। चाटने लगे हैं तलुवे। फिर भी पद यात्रा के बिना जनता के सुख-दुख से नहीं जुड़ा जा सकता। इस जेट विमान के युग में। कभी-कभी रेल मंत्री भी एयर कंडीशन के शानदार डिब्बों को छोड़कर अचानक द्वितीय श्रेणी के डिब्बों में यात्रा करके जनता के दुख-दर्दों में हिस्सा बँटाते हैं। उन्हें दूर करने के प्रयत्न करते हैं। उसी प्रकार अब हमारे स्वयंभू नेतागण भी पद यात्रा द्वारा जनता के दुखों को गहराई तक जानने में लगे हैं। जी जान से। वे यहाँ-वहाँ पद यात्रा करते हुए पाये जाते हैं—

"जाके पैर न फटी बेवाई,
वे क्या जाने पीर पराई।

□□

चन्द्रमुखी ! सूर्यमुखी !! ज्वालामुखी !!!

कुलीन नारियों ने दस्तखत करते सीखे। उनकी सुपुत्रियों को जिस शिक्षा ने साक्षर बनाया है उसी किताबी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा है। अपनी मुर्गी की एक टांग वाले बुद्धिजीवी भी बहुत पैदा किए हैं उसने। ऐसे युवकों को जन्म दिया है बहुत बड़ी तादाद में जो हाथ मे डिग्रियाँ थामे दरबदर नौकरी के चक्कर में चप्पलें ही नहीं अपनी उम्र भी घिस रहे है। ऐसे ही युवकों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक युवक की सरस प्रेमकथा सुनिए। बबुआ की प्रेमकथा। उसकी चन्द्रमुखी पत्नी की प्रेमकथा।

बबुआ प्रतिदिन चिलचिलाती धूप में हर दरवाजे पर जाते हैं। "नो वैकेन्सी" का ठंडा-मीठा शर्बत पीते हैं। रात को घर लौटने पर कभी बाबूजी की तो कभी अम्माजी की डाँट खाते हैं। कभी-कभी भाभी जी भी षट रस भोजन में प्यारी-प्यारी झिड़कियाँ परोसती हैं। कल तक छात्र नेता थे तो सब ओर पूछ होती थी। आज बेरोजगार हैं तो सब कुछ छिन गया। तूफानी विद्रोही व्यक्ति धीरे-धीरे दब्बू होता आ रहा है। फिर भी एक दिन बिल्ली के भाग से छींका टूट गया। मिल गई नौकरी चार सौ रुपल्ली की। बबुआ धूमधाम के साथ क्लर्क हो गये। गढ़ जीत लिया। इसके बाद सूर्य व चन्द्र की तरह अटल "वेटिंग लिस्ट" मे अटकी हुई नौकरी के बाद आती है छोकरी जिसे बाद में पत्नी के नाम से जाना जाता है। बहुत भाग्यशाली थे बबुआ। क्लर्क होकर भी प्रोफेसर पत्नी मिली ! पहले पहल चन्द्रमुखी पत्नी के प्रेम में लिपटे बबुआ बहुत तारीफ करते थे अपनी प्रोफेसर पत्नी की। धीरे-धीरे बेचारे बबुआ का मोह भंग हो गया।

पत्नी को पालने की इच्छा रखते हुए भी अब पत्नी उन्हें ही अपने आदेश के पालने में झुलाने लगी। मैंने एक दिन उन्हें समझाया था। ज्यादा मत रीझना बबुआ। मेरी बात गाँठ बाँध लो। पत्नी रूपी दुल्हन पहले

पहल जब देहरी पर पैर रखती है तब उसे सभी चन्द्रमुखी कहते हैं और वह वर्ष भर चन्दा की तरह शीतल बनी रहती है। पति बेचारा पारिवारिक नाटक के प्रथम अंक में ही अपना होश खो बैठता है। पर जैसे-जैसे पारिवारिक जीवन को आह्लादित करने वाली रात ढलती है। सूर्योदय होता है। धीरे-धीरे चन्द्रमुखी अपने सद्गुणों से सूर्यमुखी कहलाने लगती है। समय का सूर्य जैसे-जैसे ऊपर उठता है सूर्यमुखी का तेज बढ़ता आता है। विकास प्रकृति का नियम है। प्रगति के उच्चतम सोपानों को लांघता पत्नी चन्द्रमुखी से सूर्यमुखी बनती है और धीरे-धीरे वह घर भर के लिए ज्वालामुखी बन जाती है।

प्रारम्भ में बबुआ ने मेरी एक न सुनी पर अब कभी-कभी आ जाते हैं। चन्द्रमुखी से सूर्यमुखी बनी पत्नी की गाथा सुना जाते हैं। कहते हैं पत्नी का प्रमोशन भी धड़ाधड़ हो रहा है। उसकी मुस्कुराहट के साथ ही। मैं वहीं खूँटे पर बँधा हूँ। हर जगह पुरुषों के हाथ से तोते उड़ते जा रहे हैं। वे दुखी स्वर में कहते हैं क्या करूँ भाई। करनी का फल भोग रहा हूँ। आफिस में महिला सुपरिंटेन्डेन्ट का कड़ा प्रशासन रहता है तो घर पर पत्नी प्रोफेसरी बघारती रहती है। पढ़ी-लिखी पत्नी पाने का सुख ही और है। बराबरी की माँग करती है हर कदम पर। कहती है पहले प्रोफेसर बनो फिर अपना शान बघारना। एक बात कहो तो दस सुनाती है। एक मारो तो दो मारती है। गया जमाना मूँछ की बाल का। और क्यों न जाये? अब तो सब सफाचट क्लीन शेव का मामला रखते हैं। प्रोफेसर पत्नी कहती है। पहले घर में समाजवाद लाओ। मुझे अवसर की समानता दो। मैं भी मित्रों के साथ १२-१२ बजे रात तक घूमना चाहती हूँ। तुमने अकेले ठेका नहीं ले रखा है। पहले मेरी सुनो। मेरी सेवा करो। फिर लाना समाजवाद देश में। पहले बाल-बच्चों के लिए संघर्ष करो फिर दीन-दुखियों की सेवा करना। उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करना। बड़े कम्युनिस्ट बने फिरते हो। पूरी जिंदगी में दो कमरे का मकान नहीं बना पाए। सरकार बनाने चले। तुमसे अच्छी तो मैं हूँ। देखो! जहाँ जाती

हूँ—सम्मान पाती हूँ। मैडम के पदचिन्हों पर चल रही हूँ। मुझे तो इस बार ही टिकिट के लिए आफर दिया था उन लोगों ने। मैंने ही मना कर दिया। तुम्हारी घर गृहस्थी का जंजाल नहीं होता तो मैं भी एम० एल० ए० बनकर ठाठ से भारत भ्रमण करती। कहीं उद्‌घाटन तो कहीं शिलान्यास करती। अपने लड़के को कुछ न कुछ बनाती। पर तुमसे पिंड छूटे तब न।

इस बीच बबुआ का ट्रांसफर हो गया। वह वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष था जब बबुआ का ट्रांसफर हुआ। आज उनका पत्र दस-बारह वर्षों बाद आया है। सूर्यमुखी से ज्वालामुखी बनी पत्नी का लेखा-जोखा है। लिखा है भैय्या तुम्हारी बात सच निकली। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में पत्नी की सैकड़ों बेवकूफियाँ झेली। पूरे ३६५ दिन कभी गोष्ठी, कभी सम्मेलन तो कभी पार्टी में जाती रही। लौटने का कोई ठिकाना नहीं। पूछने पर कहती। तुम क्या जानो ? महिलाओं के विकास के लिए हमको कितने पापड़ बेलने पड़ रहे हैं। कभी तुमने पापड़ बेले हों तो उसके दर्द को समझो। कभी हाथ नहीं रखने दिया। थकी हारी आई हूँ कहकर। तुम लिखा कितने ही पढ़ लिख जाओ। तुम्हारी जाति ही ऐसी है। भावना और प्रेम को नहीं समझ सकते। तुम्हारे लिए तो पत्नी एक खिलौना है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष से अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष तक लगातार सुन रहा हूँ। अब शांति वर्ष की बात मत पूछो ? युवा वर्ष में ही। बुढ़ा गयी थी। परन्तु फिर से युवा बनाने की धुन सवार थी।

कहती थीं। जब प्रधानमन्त्री ४० वर्ष में युवा हैं तो मैं क्या ४५ वर्ष में ही बूढ़ी बनकर बैठ जाऊँ। तुम बैठे रहो हाथ पर हाथ धरकर। आखिर तुम भारतीय युवक हो न। पत्नी को पैर की जूती ही समझते रहोगे। खून का असर कभी नहीं जाता। आखिर तुम्हारे पूर्वजों का खून जो दौड़ रहा है तुम्हारी रगों में। शेर की खाल ओढ़ लेने से सियार शेर नहीं हो जाता। क्या करूँ भाई भाषण बन्द करने के लिए २-२ बजे रात को चाय बनाकर पिलाना पड़ता है। और फिर उनके खर्राटे सुनकर रात बिताती हूँ। कठोर

हृदया कोमलांगी पत्नी के भीतर इस सद्गुण ने उसी वर्ष जन्म लिया था। और धीरे-धीरे यह अपना आकार-प्रकार बढ़ाता जा रहा है।

आज पानी हद से गुजर गया भैय्या ! शांति अभियान में निकली थी। दो दिन बाद रात २ बजे लौटी एक मुसटंडे के साथ। मैंने पूछा ? बोली ! यह मेरा अंग रक्षक है। घर तक पहुँचाने आया था। मैंने कहा। अब यह सब छोड़ो। बच्चे बड़े हो रहे हैं। उन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। उसने कहा। मैं तो बहुत कुछ छोड़ना चाहती हूँ। यह अन्तर्राष्ट्रीय शांति वर्ष है। इसलिए चुप हूँ। नहीं तो दिखा देती पतिदेव जी। आपको भी दिन में भी तारे। बबुआ यह सुनकर हक्के-बक्के रह गये और कोसने लगे उस घड़ी को भूतपूर्व चन्द्रमुखी (अब ज्वालामुखी) को देखकर उधार की ये दो पंक्तियाँ कही थी :

> सब कुछ खुदा से माँग लिया है तुझको माँगकर।
> उठते नहीं है हाथ मेरे इस दुआ के बाद॥



और मेरा टी० वी० आया

मोहल्ले के अधिकांश घरों में टी० वी० दामाद की तरह प्रवेश पा चुका है। घर के बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसे सर आँखों पर बैठाते हैं। बड़ी आवभगत होती है। जिस महीने जिसके यहाँ टी० वी० आया उसने पार्टी दी और टी० वी० देखने के लिए आमंत्रित करते हुए अपने आपको गौरवान्वित महसूस किया। मेरी गृहस्थी की गाड़ी बिना टी० वी० के छोटी रेल लाइन की तरह छुकछुकाती जा रही है। जिसे मजाक में भैंसा-गाड़ी की उपमा दी जाती है। जब कभी भी टी० वी० पर कोई बढ़िया फिल्में, नाटक या सम्मेलन होता तो दूसरे दिन आफिस में जमकर चर्चा होती है। अर्जेन्ट की लाल चिटें लगी फाइलें लालफीताशाही को निहारती रहती हैं टुकुर-टुकुर। जो चर्चा में भाग नहीं ले पाता वह टायलेट में जाकर मुँह छिपाता है। क्योंकि एक साथ सब के सब गोली की तरह अपना प्रश्न दागते हैं। "यू डेन्ट हैव टी० वी०" ? और बिना टी० वी० वाले हड़काए कुत्ते की तरह रिरियाते से कहते। अगले माह लूँगा यार। अभी पोजीशन जरा टाइट है।

जिन घरों में टी० वी० आया वे सब के सब इक्कीसवीं सदी में जाने की बातें करने लगे। ऐसा लगता है कि टी० वी० देखकर ही इक्कीसवीं सदी में पहुँच जायेंगे। बच्चों को सारे सीरियल की कहानियाँ कंठस्थ हो चुकी हैं। कलाकारों को पहचानने में वे विशेषज्ञ हो चुके हैं। इसी तरह ज्ञान के भंडार का लगातार विकास हो रहा है। कूल्हे मटकाते चित्रहार और नए-नए विज्ञापन दिखाकर बच्चों की मेधा शक्ति का सदुपयोग हो रहा है।

टी० वी० आते ही घर भर का रुतबा बढ़ जाता है। टी० वी० वाले कहते हैं। खर्च जरूर हुआ परन्तु टी० वी० से लाभ बहुत है। बच्चे अब घर पर ही रहते हैं। बच्चों की आदत में बहुत सुधार हो गया है किसी से लड़ते-झगड़ते नहीं। टी० वी० में फिल्मों के साथ-साथ योगा और भजन-कीर्तन का भी आनंद मिलता है। घर बैठे दुनिया की सैर हो जाती है। जन्माष्टमी और रामनवमी की झाँकी कितनी बढ़िया रहती है। तुम क्यों नहीं आए कल। नहीं लिया टी० वी० तो कोई बात नहीं हमारे यहाँ आ

आया करो। भाभीजी को भी लेते आना। और फिर वही हुँसी। टी० वी० माने समझाते हैं। पैसे भी करो। टी० वी० से लो मार। तुम नहीं जानते। टी० वी० से बच्चों के ज्ञान में भी बहुत वृद्धि होती है। पेसकूद की शिक्षा देते हैं टी० वी०। क्रिकेट भी दिखाता है। हाकी और फुटबाल भी। लान टेनिस से लेकर टेबल टेनिस तक। वह दिन दूर नहीं जब आप टी० वी० पर मुर्गों को लड़ाई भी देखेंगे। व्यंजन बनाने की विधि भी महिलाएं सीख सकती हैं। मैं कहता हूँ कि कुछ दिनों बाद छात्र सीखेंगे कि परीक्षा में नकल करते समय कैसे सावधान रहा जाय। नई-नई टेक्निक और कम्प्यूटर का प्रयोग टी० वी० बताएगा पति को कैसे नियंत्रण में रखे। पतियों को बताएगा कि बीवी को कैसे खुश रखा जाय।

टी० वी० आधुनिक क्रांति का सबसे बड़ा प्रतीक है। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को उथल-पुथल करने में इसका योगदान ऐतिहासिक है। इतिहास के पन्नों में इसे स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। ड्राइंग रूम या बैठक में टी० वी० का होना ही सभ्य व शिक्षित परिवार की निशानी है। विश्वबन्धुत्व का सपना साकार कर रहा है टी० वी०। पूरा का पूरा परिवार है। चाहे आपको लीबिया पर अमरीकी हमले की जानकारी लेना हो। या लड़की के लिए वर की तलाश हो। टी० वी० के सामने बैठिए। अखबार के वैवाहिक विज्ञापनों में धोखे की संभावना बनी रहती है। अब टी० वी० में ऐसा होगा कि विवाह योग्य युवक-युवतियां देखिए और घर बैठे ही मनचाहा वर या बेटे के लिए लाड़ली बहू पाइए। यही कहावत चरितार्थ होगी—"लोड़ा लगे न फिटकरी रंग चोखा का चोखा"। अनेक परिवारों में टी० वी० ने गृहयुद्ध को जन्म दिया है। वार्तालाप के कुछ अंश सुनिए—

पत्नी—मैं पूछती हूँ ? आखिर कब खरीदोगे टी० वी० ? जब मेरी अर्थी निकल जाएगी ?

पति—खरीदूँगा भाग्यवान। कुछ दिन और रुक जा।

पत्नी—ऐसा कहते-कहते तीन साल गुजार दिए।

पति—अभी देख तो रही हो कितनी तंगी है।
पत्नी—तुम्हारा हाथ तो जिंदगी भर तंग रहेगा।
पति—अच्छा तुम्हारे अगले जन्मदिन पर खरीदेंगे।
पत्नी—क्या बुढ़ापे में खरीदोगे। तब तुम्हारे आधा दर्जन बच्चों को पालूंगी या टी० वी० देखूंगी। मुझे तो आज ही चाहिए टी० वी०।
पति—मेरी मानो भागवान। टी० वी० का घर में आना अच्छा नहीं होता। बीवी खाना बनाने से भी कतराती है।
पत्नी—लेकिन मैं हमेशा बनाऊंगी।
पति—मैंने बहुत से घरों में देखा है। टी० वी० देखने के बाद रात १० बजे पत्नी बड़े प्यार से पति के गले में हाथ डालकर कहती है। आज टी० वी० में मजा आ गया। बहुत थक गई हूं। चलो न आज का डिनर होटल से लेकर आते है।
पत्नी—तुम चिंता मत करो। मैं दोपहर को ही ढेर सारे पराठे बनाकर रख दिया करूंगी।
पति—देखो। हम लोग हर रविवार को पिकनिक के लिए जाते हैं। मित्रों से मिलते है। सब बंद हो जायेगा।
पत्नी—हो जाए बंद। सबके यहाँ टी० वी० है। कोई भी रविवार को अपने यहाँ मेहमान का आना पसंद नही करते। हम नहीं जानते। आज ही लाइए टी० वी०।
पति—देखो। तुम तो पढ़ी-लिखी हो। ये वैज्ञानिक रिसर्च कर रहे है। बार-बार न्यूज पेपर में भी तुम पढ़ती हो। बच्चों की आंखों पर बुरा असर पड़ता है। टी० वी० देखने से।
पत्नी—अब पड़ता है तो पड़ने दो। भाड़ में जाए तुम्हारे चहेते वैज्ञानिक। जैसा समाज होगा वैसे हम होंगे।
पति—उस दिन आया था पेपर में। दूरदर्शन बच्चों का भोलापन नष्ट कर रहा है।
पत्नी—अच्छा है जी। नष्ट होने दो भोलापन। आजकल भोले लोगों को

जीने कौन दे रहा है।

पति—बच्चे फिर किसी की सुनते भी नहीं। पढ़ते-लिखते नहीं, दिन-रात टी० वी० से चिपके रहते हैं। बच्चे बिगड़ जायेंगे।

पत्नी—दुनिया में तुम्हीं एक बच्चे वाले नहीं हो। औरों के भी बच्चे हैं। तुम यह क्यों नहीं सोचते कि बच्चे भरी दुपहरी में इधर-उधर भटकते हैं। टी० वी० घर में आ जाए तो आवारागर्दी से बचें।

पति—लेकिन बच्चे तो पड़ोस में टी० वी० देख ही लेते हैं। कभी-कभी तुम भी चली जाया करो।

पत्नी—बच्चों को टी० वी० वाले कई बार भगा देते हैं। सब कहते हैं। टी० वी० नहीं ले सकते तो बच्चों को घर पर रखना चाहिए। दोपहर में दूसरों के यहाँ धूम मचाने के लिए भेज देते हैं। मेरे तो कान के परदे फट जाते हैं। सर नोचा हो जाता है। मैं कुछ नहीं जानती। आज ही लाकर दो टी० वी०।

राजनीति में फूफकर चाटने की कला को—शृंगार रस कहते हैं। घर पर टी० वी० की उपस्थिति शृंगार रस को अर्थात् प्यार के रस को जन्म देती है। अनेक पतियों ने बताया जब तक टी० वी० नहीं खरीदा गया पत्नी की मुद्रा वीर रस की बनी रही। धीरे-धीरे रौद्र रस का रूप धारण करने लगी थी मुद्रा। मुझे पत्नी से वार्तालाप की स्थिति याद आई। मैं भी वीररस की मुद्रा को रौद्र रस की ओर नहीं बढ़ने देना चाहता था कि वीर रस की मुद्रा पुनः शृंगार रस की ओर झरने सी कलकल करती हुई बहने लगे। अतः मेरी जेब से चार हजार रुपये निकल गये। टी० वी० आ गया। पत्नी प्रसन्न हुई। टी० वी० आने की खुशी में होटल में डिनर का कार्यक्रम पहले ही बन चुका था। उस दिन पत्नी ने आँखों ही आँखों में बहुत प्यार किया। तथास्तु की मुद्रा में उसकी मौन अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार रही—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

□□



महावीर अग्रवाल

जन्म तिथि–२५ मई १९४९

जन्म स्थान–रायपुर जिले का गांव 'कुरुद'

शिक्षा–वाणिज्य से स्नातकोत्तर

पिछले ९ वर्षों से बहुचर्चित लघुपत्रिका 'सापेक्ष' का सम्पादन।

प्रगतिशील साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय और रचनात्मक हिस्सेदारी।

अधिकांश लघुपत्रिकाओं और व्यावसायिक पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

तीन दैनिक पत्रों में नियमित स्तम्भ लेखन।

शीघ्र प्रकाश्य :

(१) श्वेतकपोत की वसीयत

(२) छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य

(३) कविता संग्रह,

(४) व्यंग्य संग्रह

सम्पर्क–एच० २४/८, सिविल लाइन, कसारीडीह, दुर्ग (म० प्र०) ४९१-००१